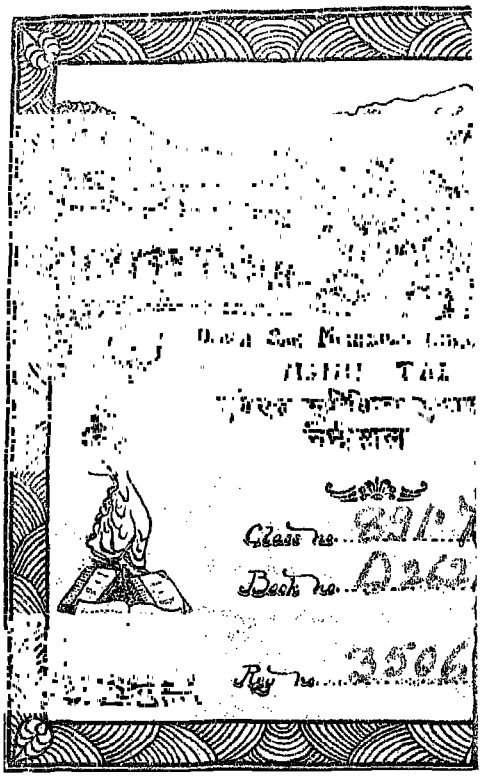

Class no. 891.
Book no. D262
Reg no. 3506

अ ध खि ली

हमारा मनोरंजक साहित्य

सचित्र गृह-विनोद	अरुण, एम० ए०	८)
सचित्र व्यंग्य-विनोद	अरुण, एम० ए०	६॥)
गप्पों का खजाना	अरुण, एम० ए०	१)
रेडियो-नाटक	हरिश्चन्द्र खन्ना	६)
शिवालक की घाटियों मे (सचित्र)	श्री निधि	५)
पृथ्वी-परिक्रमा (सचित्र)	सेठ गोविन्ददास	१२)
नेपाल की कहानी (सचित्र)	काशीप्रसाद श्रीवास्तव	८)
रजवाड़ा (सचित्र)	देवेश दास	५)
चम्पारन में महात्मा गांधी (सचित्र)	राजेन्द्रप्रसाद	५)
भारत का चित्रमय इतिहास	महावीर अधिकारी	६)
अजी सुनो (सचित्र हास्य कविताएँ)	गोपालप्रसाद व्यास	५)
मैंने कहा (सचित्र हास्य निबन्ध)	गोपालप्रसाद व्यास	३)
मानव की परख	देवीदयाल सेन; भूमिका—श्री जगजीवनराम	३)
केसर के फूल	मोहनकृष्ण दर; भूमिका श्री—जवाहरलाल नेहरू	२)
नरक का न्याय	मोहनसिंह सेंगर	२)
जीवन के मोड़	महावीर अधिकारी	३)
कारावास	यशपाल, बी० ए०	२॥)
अमृत और विष	अरुण, एम० ए०	२।)
मृत्यु में जीवन	अरुण, एम० ए०	१)
स्वप्न-भंग	होमवती	२)
बेल-पत्र	कमलादेवी चौधरी	१)
उन्माद	कमलादेवी चौधरी	२॥)
यात्रा	कमलादेवी चौधरी	३)
प्रायश्चित	(मूल ले० मोपांसा) अनु० सन्तोष गार्गी	१।।।)
एंन्टन चेखव	[illegible] अरुण	१॥)
मैक्सिम गोर्की	[illegible] अरुण	३)
कला का पुरस्कार	[illegible] शर्मा 'उग्र'	३)
आदर्श भाषण-कला	यज्ञदत्त शर्मा	७॥)
आदर्श पत्र-लेखन	यज्ञदत्त शर्मा	७॥)

आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-६

अधखिली

(तेतालीस व्यंग्य-चित्रों सहित एक व्यंग्यात्मक उपन्यास)

लेखक

देवेश दास

आई. सी. एस.

जॉइन्ट सैक्रेटरी, संचार मन्त्रालय, भारत सरकार

नई दिल्ली

१९५६

आत्माराम एण्ड संस

[redacted]काशक तथा पुस्तक-विक्रेता

काश्मीरी गेट

दिल्ली—६

मूल्य चार रुपये

प्रकाशक : आत्माराम एण्ड संस, काश्मीरी गेट, दिल्ली- ६

मुद्रक : सुरेन्द्र प्रिन्टर्स लि०, जिन्टीगंज, दिल्ली-६

चित्रकार : श्री मालकम मेसन

मुखपृष्ठ : श्री [illegible] विश्वास

Durga Sah Mu

[सर्वाधिकार सुरक्षित]

लेखक की अन्य दो महत्त्वपूर्ण रचनाएं

रजवाड़ा

राजस्थान की कला, संस्कृति तथा गाथाओं का सजीव वर्णन

पृष्ठ १६० चित्र ३७ मूल्य ५)

यूरोपा

यूरोपीय देशों के सांस्कृतिक एवं बौद्धिक विकास का सरस और भावात्मक विवेचन

पृष्ठ १८४ मूल्य ३)

आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-६

माननीय

श्री जगजीवनराम जी

को

जिनसे प्रेरणा पाकर

देश में अनेक अधखिले जीवन

खिल उठे हैं

निवेदन

'अधखिली' श्री दास जी का व्यंग्यात्मक उपन्यास है। इसका रंग ही दूसरा है। इसमें वे एक व्यंग्यकार के रूप में हमारे सम्मुख आते हैं—ऐसे व्यंग्यकार जिसकी दृष्टि इतनी पैनी है कि वर्तमान समाज के भीतर के खोखलेपन को स्पष्ट देख सकता है और जिसकी लेखनी इतनी तेज़ है कि उसे वह सहज ही में निरावरण कर सकता है। श्री दास जी की लेखनी में एक चमत्कारपूर्ण बात यह है कि आप तीखे से तीखा व्यंग्य भी सरल हास्य के साथ कर जाते हैं और रोमांस में कहीं भी कमी नहीं आने पाती। साधारणतया रोमांस और व्यंग्य साथ-साथ नहीं चलते परन्तु इस पुस्तक में लेखक ने दोनों का अपूर्व मिश्रण किया है और यही उसकी सबसे बड़ी सफलता है। व्यंग्य, हास्य और रोमांस के अपूर्व सम्मिश्रण से उपन्यास का साहित्यिक सौष्ठव मानो दीप्तिमान हो उठा है और अधखिली कली मानो पूर्ण रूप से विकसित पुष्प हो गई है।

आधुनिक भारतीय जीवन के विभिन्न पहलुओं को अपनी पैनी दृष्टि से देखकर और उसके अन्तर की दुर्बलताओं पर अपनी समर्थ लेखनी से प्रहार करके व्यंग्य के कांटों से उसे कुरेदकर और हास्य के मधु से अनुलेपन कर उन्हें पूर्ण रूप से स्वस्थ बना दिया है। भारतीय सभ्यता और संस्कृति की गहनतम चेतना से अभिभूत होकर इस पुस्तक में स्थान-स्थान पर विदेशी रीति, व्यवहार और भाषा के अनुकरण की प्रवृत्ति पर क्षमतापूर्वक व्यंग्य किये गये हैं—ऐसे व्यंग्य जो हँसाते-हँसाते आँखों में उँगली डालकर दोष-दर्शन करा दें। वास्तविकता के प्रकाश में हमारे आधुनिक जीवन का बहुत ही रोचक प्रदर्शन इस पुस्तक में किया गया है।

हिन्दी में व्यंग्य-साहित्य की कमी है। जीवन की जटिलताओं को क्षण भर भुलाकर जीवन के सुखों का सहास्य उपभोग करा सके ऐसा साहित्य हिन्दी में कम है। 'अधखिली' इस कमी की बहुत कुछ अंशों में पूर्ति करेगा। पुस्तक में हास्य का मधु, व्यंग्य के कांटे और रोमांस की चमक तीनों ही समान रूप में विद्यमान हैं जो पाठक को बरबस अपनी ओर आकृष्ट करके अपने में उलझा लेते हैं। पुस्तक एक बार प्रारम्भ करके अन्त तक बिना पढ़े छोड़ने को मन नहीं करता और पुस्तक समाप्त कर लेने पर ऐसा लगता है कि मन की अधखिली भावना मानो पूर्णरूप से प्रफुल्लित हो गई है।

इस पुस्तक का निश्चय ही हिन्दी संसार में आदर होगा।

प्रकाशक

'अधखिली' पर कुछ सम्मतियाँ

"आधुनिक नवयवक और नवयुवतियों के जीवन पर आधारित···व्यंग्य और रंग का अपूर्व सम्मिश्रण हुआ है तथा साहित्यिक सौष्ठव दीप्तिमान हो उठा है। वाग्वैदग्ध्य प्रचुर मात्रा में है।···भारतीय सभ्यता और संस्कृति की गहनतम चेतना से अभिभूत हो विदेशी रीति, व्यवहार और भाषा के अनुकरण की प्रवृत्ति पर क्षमतापूर्वक व्यंग्य कसे गये हैं।" —देश

"लेखक ने हमारे मध्यवित्त चरित्र और सामाजिक जीवन की समस्त कमजोरियों पर अच्छा हास्य उंडेला है···वास्तविकता के प्रकाश में हमारे आधुनिक जीवन का अच्छा प्रदर्शन किया गया है।" —युगान्तर

"रोमांस के साथ व्यंग्य का सफलतापूर्वक निर्वाह करने में लेखक बेजोड़ है··· कई विभिन्न चरित्रों की सृष्टि की गई है।" —हिन्दुस्तान स्टैन्डर्ड

"बंगाली साहित्य में एक आविष्कार···भारतीय भाषाओं में व्यंग्य के अनधिकृत क्षेत्र में भाषा के सफल प्रयोग का प्रकटीकरण।" —अमृतबाजार पत्रिका

"इनकी लेखनी तीक्ष्ण अस्त्र के समान काम करती है। पुस्तक एक सांस में समाप्त किए बिना सन्तोष नहीं होता है···बंगाली साहित्य की समृद्धि हुई है।"

—वसुमती

"लेखक के व्यंग्य और सहानुभूति से मध्यवित्त वर्ग की यावज्जीवन विपत्तियों का कोई भी पहलू छूटने नहीं पाया है···पाठकों के मन पर एक अमिट छाप पड़कर रह जाती है। साहित्य क्षेत्र में एक नवीन युग का सूत्रपात हुआ है।" —भारतवर्ष

"इसमें हास्य का मधु और व्यंग्य के कांटे दोनों ही हैं। लेखक ने पाठकों की कृतज्ञता अर्जित की है।" —प्रवासी

"बिल्कुल विभिन्न प्रकार की पुस्तक। वास्तव में साहित्य क्रमशः गंभीरतर होता जा रहा है। जीवन की जटिलताओं को भुलाकर जीवन-सुखों को सहास्य उपभोग करने का कोई साधन नहीं है। ऐसे ही समय श्री दास सरीखे लोकप्रिय साहित्यिक ने पाठकों के भग्नप्राय मनों पर आशा की किरण उद्दीप्त की है।"

—ऑल इण्डिया रेडियो

अधखिली

१

रंगमंच पर पर्दा तड़तड़ करतल-ध्वनि के बीच गिर गया। नाटक बड़ा ज़ोरदार था। समस्या विवाह सम्बन्धी थी और वह भी बिल्कुल आधुनिक। गिरीश घोष के 'सिद्धार्थ' या डी० एल० राय के 'मेवाड़-पतन' जैसी उसमें कोई चीज़ नहीं थी। एकदम सौ फ़ी-सदी ताज़ा चुभता हुआ हल्का नाटक था।

यह 'आधुनिक' शब्द भी बड़ा मज़ेदार है। जो किसी प्राचीन श्रेणी में नहीं आता, उसे मज़े से आधुनिक कह दिया जा सकता है। बंगला संगीत के क्षेत्र में जो गाना कीर्तन, भटियाली या अन्य किसी, यहाँ तक कि रवीन्द्र संगीत में भी सम्मिलित नहीं होता, वह आधुनिक माना जाता है।

प्रद्युम्न और सुरधुनि, नहीं-नहीं, सुरधुनि और प्रद्युम्न भी इस आधुनिक नाटक को देखने आये थे। बात यह है कि सुरधुनि पहले इस नाटक को देख गयी थी और अब अपने पति को नाटक दिखाने ले गयी थी।

नाटक का कथानक क्या है, इसे न जानने पर भी काम चल जायगा, क्योंकि कथानक होता, तो फिर नाटक क्यों होता! नाटक की मूल घटना समाप्त होने के बाद उस पर कुछ दार्शनिकता का फाहा लगाने के लिए उपसंहार के रूप में एक दृश्य और जोड़ दिया गया था। नाटक में कुछ गंभीरता आ गयी थी, इसलिए घर लौटने से पहले दर्शकों को हँसाकर खुश कर देना आवश्यक था।

अन्तिम दृश्य में दूल्हे के दो मित्र परस्पर दिल खोलकर अपने-अपने मन की कह-सुन रहे थे। उनके मित्र की शादी तो ख़ैर किसी

तरह सैकडो रगड़े-झगडे और जोड-तोड के बाद हो गयी, पर अब स्वय उनका क्या बनेगा, इसी उधेडबुन मे लगे थे। दोनो की समस्या का सम्बन्ध विवाह से था। एक तो शादीशुदा होने के कारण विपत्ति मे था, दूसरा शादी का उम्मीदवार होने के कारण। दोनो ही बहुत दुखी थे। गानो शनिवार की सध्या को एक ने ता रेस मे दाव लगाने के कारण अपना दिवाला पीट दिया था और दूसरा इस कारण दुखी था कि उसे रेस मे दाँव लगाने का मौका ही नही मिला।

एक मित्र बालो मे उंगली फेरते हुए अन्यमनस्क-सा होकर खड़ा हो गया। यह देखकर दूसरे मित्र ने उसकी पीठ थपथपाते हुए कहा—"कहो बिरादर, मित्र और मित्र-वधु का झगड़ा तो इस तरह

गोली से चाहे मार देना, पर धर्मावतार, नौकरी से हाथ न धोना पड़े.

चुटकियों में ही निपट गया। घाते में तुम्हें पेट भरकर पूड़ी-पकवान खाने का मौक़ा मिला, फिर भी तुम दुखी दीखते हो ?"

दूसरे मित्र पर मानों दुनिया भर की मुसीबतें टूट पड़ी हों। वह

खिन्न होकर बोला—"पूड़ी-पकवान से पेट तो भरा, पर मेरी जो असली विपत्ति थी वह कहां दूर हुई ?"

"क्यों क्या दफ्तर मे नोटिस मिल गया ?"

"नहीं बिरादर, अगर ऐसा होता तो अब तक खुदकशी कर लेता। नित्य सवेरे उठकर साहब से प्रार्थना करता हूँ कि हजूर, गोली से चाहे मार देना, पर धर्मावतार, नौकरी से हाथ न धोना पड़े !"

"फिर डर काहे का ?"

"डर यह है कि सात दिन से गृहिणी ने बोलने की हड़ताल कर रक्खी है !"

"वाह, तब तो तुम्हारे पो-बारह है। चलो चैन तो मिली। न वाक्यरूपी बाणो का सामना है, और न मीठी छुरी का !"

पर मित्र इस बात से सतुष्ट नही हुए। दुखी होकर बोले—"पर आज ही अन्तिम रात है।"

"यह बात है ? भद्र, कारण भी तो बताओ कि भाभी ने यह तूफान क्यो खड़ा किया ?"

"कारण क्या होता ? कारण यही था कि तुम लोगो से घटा-आध घटा बोल-बतला लेता था। आखिर हम लोगो के सीधे-सादे जीवन मे धरा ही क्या है, न ताजगी है और न कुछ लुत्फ है ! बस एक ही मसला है—नून, तेल और लकड़ी। इसमे न तो कोई डिस्कवरी है, और न कोई सुसवाद। दिल बहले तो बहले, नहीं तो जाओ भाड़ मे। इसलिए तुम लोगोसे बोल-बतला कर, कुछ देर के लिए पर-निन्दा का पान चबाकर, जरा मुँह रसीला कर लेता था। कभी-कभी लौटने मे कुछ देर भी हो जाती थी !"

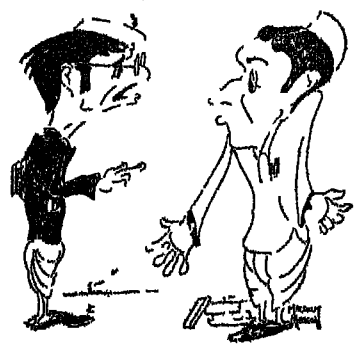

वही नून, तेल और लकड़ी।

"तो इसमें भाभी को क्या एतराज है?"

"एतराज़ सिर्फ एक है। उनका कहना है कि मैं खूब रंगरेलियाँ करता हूँ, और वह घर में अकेली सारे कसाले झेलती हैं!"

"तो इस बात का इलाज क्या हो? ऐसा तो हो नहीं सकता कि वह तुम्हारे मित्रों की बैठक में आवें!"

"नहीं, बिल्कुल नहीं, मुझे इसमें आपत्ति है, और इससे उनके लिए तो और भी ज़्यादा विपत्ति हो सकती है।"

"पहेलियाँ न बुझाओ। विपत्ति और ज़्यादा विपत्ति की परिभाषा बतलाओ?"

"मान लो वह क्रोध में आकर मायके चली जायें, तो यह ज़्यादा विपत्ति है, और यदि वह कुछ समझकर फुफकारती हुई घर लौट आवें तो इसे मैं विपत्ति मानता हूँ।"

"जाने दो इस प्रसंग को, मुझे ऐसा मालूम देता है कि तुम लोगों के इस मनमुटाव में और भी कई गहरी गाँठें पड़ गयी हैं।"

"ज़रूर, ज़रूर, पर वे गाँठें कभी खुलेंगी, ऐसा नहीं जान पड़ता। जब कभी मैं देर से घर पहुँचता हूँ, तो मुहल्ले में सन्नाटा रहता है। पता नहीं, किसकी सलाह से मेरी पत्नी ने मुझे सुधारने का यह उपाय निकाला है कि जीने के कोने में चुड़ैल बनकर खड़ी हो जाती है। शादी के बाद से ही उन्हें पता लग गया था कि मैं ज़रा भूत-प्रेत से डरता हूँ, पर यह आशा नहीं थी कि वह चुड़ैल बनकर सताएगी!"

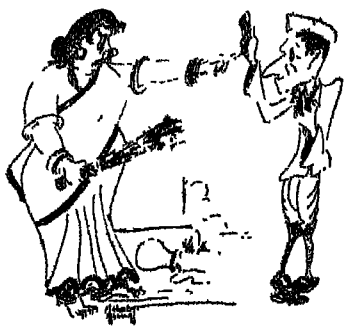

जैसे उस पर भवानी आयी हो.

"तो इसमें बात ही क्या थी? चाहे चुड़ैल हो चाहे रखैल, पैर पकड़ लेते, बस सारे बखेड़े मिट जाते!"

"कहते तो ठीक हो, पर वहाँ तो झगड़ा बढ़ा था, करता तो क्या करता? वह तो ऐसे दौड़ी जैसे उस पर भवानी आयी हो।

खखारकर बोली—जानता है मैं कौन हूँ ? मैं डायन बुढ़िया हूँ, और तेरी कोयलेवाली कोठरी में रहती हूँ !"

"इस पर तुम्हें चाहिए था कि श्रीमती डायन को अपने सोने के कमरे में बुला लेते।"

"कहा नहीं कि ग्रह-दशा खराब थी ! मैंने कह दिया—अच्छा तू डायन है ? मैं भी कोई कम नहीं हूँ, क्योंकि तेरा ही बहनोई हूँ !"

यह सुनकर मित्र के चेहरे की जो हालत हुई उसे न तो रोना कहा जा सकता है और न हँसना। अविवाहित मित्र ने कहा—"मेरे लिए भी दो बूंद आँसू बचा लेना।"

"क्यों, तुम्हारे लिए क्यों ? तुमने तो दिल्ली के लड्डू नहीं खाये। जब शादी होगी तब आटे-दाल का भाव पता लगेगा। अभी भले ही चौकड़ियाँ भरते रहो !"

"शादी ! उसके पहले ही सब ठंडा पड़ जायगा !"

"क्यों ? अभी तो गरम बने रहो। फिर हर बात पर ठंडा होना पड़ेगा।"

मित्र बोले—"जानते हो, एक आधुनिक प्रेमिका ने मेरी क्या दुर्गति की है ?"

"सुनाओ, जल्दी सुनाओ, अभी तो गृहिणी को मनाना है।"

"उस दिन मैंने प्रपोज़ कर ही दिया। बात यह है कि उसके पिता की ओर से कुछ प्रोत्साहन-सा मिला था। मै श्रीमती की प्रतीक्षा में ड्राइंग रूम में बैठा हुआ था। बगल वाले कमरे में उसके माँ-बाप धीमे स्वर में बातें कर रहे थे। उसकी माँ कह रही थी—अरुण के साथ मुन्नी की शादी का नतीजा अच्छा नहीं होगा, क्योंकि अरुण बहुत धनी है। इस पर पिता ने हँसकर कहा—तो इससे क्या ? जहाँ तक मैं मुन्नी को जानता हूँ, अरुण उससे शादी होने पर अधिक दिनों तक धनी नहीं रह सकता।"

"अच्छा, यह बात है ! बिल्कुल शूर्पणखा है कि मानसगंध मिली, और खून चूसने के लिए दौड़ी ?"

"नहीं नहीं, उसे मनुष्य की गंध से कोई मतलब नहीं। उसे

तो रुपये की गंध चाहिए, रुपये की। पर वह अधिक खर्च करने वाली प्रेमिका नहीं है। दो साल तक मैंने उससे कोर्टशिप की, इतना तो मैं समझता ही हूँ। उसके पिता अलबत्ता साहब हैं कि प्रतिवर्ष लड़की के जन्म-दिवस पर 'फिरपो रेस्टोरेंट' से केक मँगवाते हैं। अबकी मैंने देखा कि श्रीमती ने अपने जन्मदिन वाले केक से दो मोमबत्तियाँ ग़ायब कर दीं।"

"हूँ, बड़ी होशियार लड़की है! न खर्च और न आयु—दोनों में से एक को भी बढ़ने नहीं देती! तो तुम अब की बार गंगाजी का नाम लेकर झूल जाओ!"

"झूल तो जाऊँ, पर कोई रस्सी भी तो नहीं। उस दिन मैंने निराशा के साहस में प्रपोज़ कर दिया। दो साल तक पैंतरे बदल चुका हूँ। यह भी मालूम था कि मुझ पर उसकी स्नेह-दृष्टि है। मैंने स्पोटिंग चान्स लिया।"

माला के अतिरिक्त न तो मेरा कोई सहारा है, न सामर्थ्य.

"क्या हुआ, यह तो तुम्हारे चाँद-से मुखड़े को देखकर अनुमान करना कठिन नहीं है!

"नहीं, तुम खाक भी नहीं समझे। दिल्ली के लड्डू खाना इतना आसान नहीं है। उस दिन मैंने जाल कुछ-कुछ समेट लिया था। फिर उससे मैंने कहा—'रानी, तुम सचमुच ही बहुत रईसाना तबियत की हो।' इस पर वह मधुर हँसी के साथ बोली—'रईसाना तबियत ही नहीं पूरी, रईस, क्योंकि पिताजी कुछ नहीं देंगे तो भी दस हज़ार तो दो ही देंगे!' इस पर मैंने उसकी आँखों में आँखें डालकर कहा—'और मैं तो सचमुच ही कहानी के उस चरवाहे बालक की तरह हूँ, जो राज-कन्या से शादी करने जाता है। माला के अतिरिक्त न तो

मेरा कोई सहारा है, न सामर्थ्य।' इस पर श्रीमती ने मीठी मुस्कान के साथ एक कड़ी गायी—

'दूर देश का वह चरवाहा, मेरे बाट के बट की छाया।'

सुनकर मुझे इतना उत्साह हुआ कि मैंने विवाह का प्रस्ताव रख दिया, आँखें मुंद गईं—बात यह है कि भावुकता तीव्र हो गयी। पर हाय री क़िस्मत!"

"हाय-हाय की क्या बात हो गयी?"—मित्र ने आग्रह के साथ पूछा।

नाटक के इस सीन पर सारे दर्शक जोश में उतावले होकर रस्सी तुड़ाने लगे। सभी जानना चाहते थे कि इसके बाद क्या हुआ। सम्राट शाहजहाँ के ज्येष्ठ पुत्र युवराज दारा को जब जल्लाद खींचकर कारागार के किनारे पर ले जाते हैं, तब भी इतना जोश दिखाई नहीं देता।

इतने में नाटक फिर से शुरू हो गया। विवाहार्थी मित्र ने कहा—"ज्योंही मैंने सुना कि कोई आशा नहीं है, त्योंही मैंने सोचा कि मैं दिखा दूँ कि मैं भी ऐसा-वैसा नहीं हूँ। मैंने तुरन्त कहा—'यह मैं पहले से ही जानता था।' इसलिए यह न समझो कि मुझे कोई कष्ट हुआ है।'

सुनकर श्रीमती को आश्चर्य हुआ। बोलीं—'तो फिर प्रपोज़ क्यों किया था? नॉटी कहीं का!' पर नॉटी सातवें आसमान पर पहुँच चुका था। पूर्णिमा के चाँद की तरह हँस कर मैंने कहा—'ऐसा इसलिए किया था कि तुम्हारे दस हज़ार न मिलने का कैसा आघात लगता है, यह अनुभव करूँ। हा हा हा हा...'

श्रीमती ने ओठ चबाकर कहा—'तो तुमने क्या अनुभव किया?'

मैंने अपना चन्द्रत्व क़ायम रखते हुए कहा—'यह सब दिल्ली के लड्डू हैं; जिसने खाये वह भी पछताया, और जिसने नहीं खाये वह भी पछताया'।"

पर इस उपसंहार को देखकर दर्शकों में से कोई भी नहीं पछताया। नाटक की मूल कहानी थी विवाह के पश्चात् पति-पत्नी का दाम्पत्य-जीवन—जिसका प्रारम्भ होता है इस मधुर आशा के आधार

पर कि यह जीवन सुखमय ही है। यहाँ दुःख का स्थान नहीं। इस कहानी में थी गम्भीरता और थी करुणा। बहुत रगड़े-झगड़े के बाद पति-पत्नी में मिलन तो हो गया। पर नाटक को और भी हँसी-खुशी के साथ समाप्त करने के लिए यह अन्तिम दृश्य जोड़ा गया था, जिसमें दो मित्र विवाह के विषय पर दार्शनिक आलोचना कर रहे थे। नीति-शास्त्र का वचन है—'मधुरेण समाप्तयेत्'।

भीड़ छँट गई। चारों तरफ़ पुरुषों की आँखें कंगालों की तरह स्त्रियों में उसको ढूँढ़ती फिरती थीं। कई स्त्रियाँ कुण्ठित हुई, कई स्त्रियों ने साड़ी के आँचल को माथे पर थोड़ा और खींच लिया। सुरधुनि का हाथ भी कुछ ऊपर की ओर उठा था, पर उसने फौरन ही नीचा कर लिया। उसका चेहरा उसके व्यक्तित्व की रोशनी से जगमगा रहा था। अब वह सन्ध्या की सूर्यमुखी नहीं थी। एक तरफ़ उसकी सास तथा अन्य रिश्तेदार और दूसरी तरफ़ पुराने आचार-विचार, उसकी खुली हुई पंखुड़ियों को मूँद नहीं सकते थे। विवाह के बाद से अब तक वह एक छोटी-सी अर्द्ध-विकसित कली थी, सहमी हुई, शर्माई हुई, अपने आप में खोई हुई-सी। वह प्रद्युम्न के निकट आधी कल्पना और आधी मानवी थी। आज वह पूर्ण मानवी हो चुकी थी, अपनी मोह-निद्रा से जग चुकी थी।

२

आज-कल याने इनकलाब के जमाने में मनुष्य जन्म लेते ही रामायण के महिरावण का बेटा अहिरावण हो जाता है। इसलिए नव-विवाहिता वधू भी संध्या समय की मुँदने वाली कमलिनी होकर क्यों रहेगी ?

मोक्षदासुन्दरी अपनी समझ में बहुत सोच-विचारकर बहू लायी थी। वे कलकत्ते के एक मुहल्ले में उस वंश की मालकिन हैं, जहाँ बाहर के कमरों पर आधुनिकता का हमला बहुत दिनों से हो चुका है। यहाँ तक कि भीतर के कमरों में भी कभी-कभी दबे-दबे, चुपके-चुपके वह आती-जाती है। पर मोक्षदासुन्दरी और उनकी प्राचीन सखियां बड़े साहस के साथ शताब्दी के इस आक्रमण को रोकती चली आ रही थीं। बंगाल की प्राचीन रीति के अनुसार ये सखियाँ आपस में एक दूसरे को गंगाजल, बेला का फूल आदि कहकर पुकारती थी। ऐसे प्रत्येक नाम के साथ कुछ जटिल अनुष्ठान भी होते थे। आज की लड़कियाँ इन नामों को सुनकर भले ही हँसें, पर उस जमाने में उन बेचारियों के पिता-माता द्वारा दिये हुए नाम अति अद्भुत होते थे, इसलिए गंगाजल आदि नाम उन्हें अच्छे मालूम होते थे।

खैर, छोड़िये इस बात को।

मोक्षदासुन्दरी के मन पर भी कभी-कभी आधुनिकता की चोट होती थी। आधुनिक हल्के-फुल्के उपन्यास बम की तरह हैं। उनका घर में प्रवेश हुआ कि बस विस्फोट हुआ समझो, और उसकी ध्वनि आग की चिनगारियों की तरह फैलने लगी। घर के कम-उम्र लोग बराबर लाइब्रेरी से नई-नई किताबें लाते हैं। पहले बहुत हुआ तो जासूसी किताबें आती थीं। अब भी वे आती हैं, पर नये ढंग की। नाम आजकल इस प्रकार के होते हैं—'कालिज की बस में', 'झील की लहर', 'हे अनामिका मित्र' इत्यादि।

मुहल्ले का पुस्तकालय केवल एक घर के लिए नहीं बना था, इसलिए मुहल्ले वाले जो पुस्तक पढ़ते थे, उनका प्रवेश इस घर में भी बीच-बीच में हो जाया करता था। मोक्षदासुन्दरी भी जब-तब दुपहर के समय ऊँघती हुई किसी पुस्तक के पन्ने उलट लेती थी। दो-चार पृष्ठ पढ़ते ही उसके माथे पर सिकुड़न आ जाती थी, मानो कुनैन मिक्श्चर का एक घूँट पी लिया हो। नाराज़गी में वह किताब को एक तरफ़ फेंक देती थी।

किताब को हटाकर वह तम्बाकू के साथ पान का एक बीड़ा चबाती थी। फिर सोचती, देख तो लें कि अन्त तक होता क्या है? लेखक कहाँ तक बेहयाई करेगा? छापे के हरोंफ़ में है, आख़िर कहाँ तक ख़राब होगी!

फिर से पुस्तक खोलते समय मोक्षदासुन्दरी ने चारों तरफ़ ज़रा अच्छी तरह देख लिया। जिल्द बड़ी सुन्दर चमकीली है, उस पर पालिश वाली तस्वीर है, तिस पर पतले सिलोफन काग़ज़ में मुड़ी हुई है। शायद यह इसलिए है कि दुकान में लोगों की दृष्टि उस पर पड़े। उसे वह दिन याद आया जब गंगा-स्नान को जाती हुई अपनी एक सहेली से, जिसे वह टगरफूल कहती थी, भेंट हुई थी। उसने एक बार अपनी सहेली से कहा था कि सोमवती अमावस्या के पर्व पर अपनी पुत्र-वधू (वधू कहना ही यथेष्ट था, पर पुत्र-वधू न कहा जाय तो 'सर्वाधिकार सुरक्षित' वाली बात कैसे ज़ाहिर हो) को गंगा नहाने भेजना उचित नहीं था, क्योंकि वह बहुत खाँस रही थी। इस पर टगरफूल सहेली ने आश्चर्य दिखाते हुए कहा था—"देखा उस चुड़ैल को। उसी दिन मैंने उसके कानों में दो नये झूमके पहनाए थे, और वह खाँस-खाँसकर उन झूमकों को हिलाती थी जिससे उन पर सबकी नज़रें टिक जायँ। आजकल की लड़कियों में शरम या हया नाम की कोई वस्तु है ही नहीं!"

हाय! कौशल्या कम्पनी को क्या पता था कि महादेव जी का ध्यान भंग करने के लिए और उनकी दृष्टि में पड़ने के लिए उमा को कितनी साधना करनी पड़ी थी! और यह तो महज खाँसी तक

ही सीमित था !

जब तपस्या और साधना की बात आ गयी, तो यह भी कहना पड़ेगा कि नौकरी के लिए आज-कल लड़कों को जो साधना करनी पड़ती है वही उमा की तपस्या है। महादेव के बदले महाबाबू या बड़े बाबू की साधना करनी पड़ती है। ज्योंही महाबाबू समझते हैं कि कोई नौकरी का प्रार्थी आया है त्योंही उनकी आँखें फ़ाइल में जम जाती हैं। ध्यान भंग होता ही नहीं। खैर, छोड़िये उस बात को।

आजकल की उमा की तपस्या.

पुस्तक खोलकर मोक्षदा ने फिर पढ़ना शुरू किया। पूरी पुस्तक खराब थोड़े ही होगी ! कहीं-कहीं अच्छी बातें भी मालूम होती हैं। इसलिए अपने तीन मन भारी शरीर से करवट बदलकर शीतलपाटी पर शान्तिपुर के करघे की महीन साड़ी से शरीर-रक्षा करते हुए मोक्षदासुन्दरी ने पढ़ाई शुरू की। अन्यमनस्क-सी अवस्था में ही पान का एक बीड़ा मुँह में चला गया।

संध्या-समय डाक्टर साहब आने वाले हैं। यद्यपि वह डाक्टर को पसन्द नहीं करती फिर भी डाक्टर बुलाना पसन्द करती है। दिन भर तो पर-चर्चा में कटता है, कभी-कभी आत्म-चर्चा भी करनी चाहिए। जब गुरु जी ने कान फूँका था, तो कहा था कि कुछ समय निकालकर आत्मा की चर्चा किया करो। इसलिए प्रतिदिन सम्भव न होने पर भी, सप्ताह में एक या दो दिन डाक्टर साहब को बुलवा-कर इस बात की परीक्षा करवाती थी कि आत्मा शरीर-रूपी पिंजड़े में ठीक से है या नहीं। कहीं वह दगा तो नहीं देगी।

मोक्षदासुन्दरी को हृदय-रोग है और साथ ही खट्टी डकार की बीमारी। दोनों बहुत पुरानी हैं। पर डाक्टर ऐसा होना चाहिए जो रोगी को खुश रखे। ऐसा डाक्टर किस काम का जो यह कहे

कि दोपहर का सोना हाजमे को ख़राब करता है। ऐसे डाक्टर की तो बस झाड़ू से ही ख़बर लेनी चाहिए, जो यह कहे कि संध्या समय मील दो मील पैदल चलिये, तभी खट्टी डकार दूर होंगी। जब पैदल ही चलना है तो डाक्टर किस मर्ज़ की दवा है? फिर कहता क्या है कि पैदल चलने से हृदय-रोग भी अच्छा हो जायगा। छीः छीः इतना पढ़-लिखकर भी क्या डाक्टर ने यही डाक्टरी सीखी!

मुहल्ले की सहेली कौशल्या भी इस पर हामी भरती है। बात यह है कि बड़ों की बात में हामी भरनी ही चाहिए। जो बड़ों से दोस्ती करना चाहे और ख़ुशामद न करे, तो फिर निभाव होना मुश्किल ही समझिये। इसमें सन्देह नहीं कि कौशल्या यदि राजनीति में प्रवेश कर पाती तो बहुत सफल रहती। इसलिए कौशल्या ने फौरन कहा—"अगर ननी डाक्टर है तो मैं भी मुख़्तार हूँ!"

ननी डाक्टर यदि यह सुनता तो अवश्य कहता कि कौशल्या बैरिस्टर बनने के योग्य है।

मोक्षदा सहारा पाकर बोली—"कहता क्या है कि रोग अच्छा करना है तो दिन का सोना और रात की पूड़ियाँ खाना छोड़ना पड़ेगा। यदि सात पुरखों से चली आयी पूड़ी और दिन भर नौकरों-चाकरों से झिक-झिक करने के बाद दोपहर का विश्राम छोड़ना पड़े तो फिर डाक्टर ही क्यों बुलाती? इसीलिए तो डाक्टर है!"

कौशल्या ने छौंक-सा लगाते हुए कहा—"ये कल के लौंडे दूसरों का कष्ट क्या जानें! 'जाके पाँव न परी बिवायी, सो क्या जाने पीर परायी।' देखने में तो बिल्कुल सारंगी की तरह हैं, तिस पर चढ़ा लिया सूट! अपना बैग भी हाथ से उठाते नहीं बनता! अजीब विलायती ढंग है! न मालूम कहाँ से···"

मोक्षदासुन्दरी इसी ननी डाक्टर को हफ़्ते में दो बार बुलाती थीं, इसलिए उसे बिल्कुल भोंदू साबित करना अपनी ही शान के खिलाफ़ था। शायद इस बात को समझकर मोक्षदासुन्दरी ने बात का रुख़ दूसरी तरफ़ मोड़ दिया। बोली—"डाक्टर तो कोई बहुत बड़ा नहीं है, पर सुना है कि उसके पास बहुत से यंत्र हैं। उनमें एक यंत्र ऐसा

भी है जिससे शरीर के भीतर का सब कुछ दिखायी देता है।

कौशल्या ने भी तोपखाने का मुँह मोड़ दिया। बोली—"तुम बिल्कुल ठीक कह रही हो। उसने शादी भी शायद उसी यंत्र की बदौलत की थी। जिसे ब्याह कर लाया है उसमें मेरे चर्म-चक्षु से न तो कोई रूप दिखायी देती है और न कोई गुण, पर सम्भव है कि एक्सरे यंत्र से किसी गुण का पता पा गया हो! हम लोग पढ़ीं न लिखीं, हम तो बस आँखों से जो दीख जाय उसी को सत्य मानती हैं!"

पर कौशल्या की दृष्टि दिव्य दृष्टि थी। उसी दृष्टि से उसने समझ लिया था कि मोक्षदासुन्दरी की खुशामद भले ही की जाय, उसे शांति से नहीं रहने देना चाहिए। इसी कारण वह मोक्षदा के ज्ञान-नेत्र खोल देने के लिए आयी थी।

पति रामप्रसाद इस समय घर पर नहीं थे। और रहते तब भी इस किस्से से उनका कुछ वास्ता नहीं पड़ता। उनकी पहुँच सिर्फ़ बैठक तक ही थी। अन्तःपुर में स्त्रियों का राज्य था। विलायती ढंग से कहा जाता है कि स्त्री 'बेटर हाफ़' या उत्कृष्टतर अर्द्धांश होती है। पर हमारे देशी समाज में स्त्री प्रबलतर अर्द्धांश है। न मानें तो विवाहित मित्रों से पूछकर देख लीजिये।

रामप्रसाद की जवानी के ज़माने में उनके मित्रों ने स्त्रियों की मुक्ति के लिए कलकत्ता की पत्रिकाओं से लेकर इंगलैंड की टेम्स नदी के तट पर स्थित दैनिक 'टाइम्स' तक में भयंकर आन्दोलन चलाया था। तब ज्ञानवृक्ष के फल चखकर भुक्तभोगी बने हुए रामप्रसाद ने गुप्त रूप से उन्हें परामर्श दिया था—"भाई, यह आन्दोलन बन्द करो। तुमको अभी कन्याओं के बल का पता नहीं। एक बार शादी कर लो तो मालूम हो जायेगा कि किसकी मुक्ति के लिए ज़ोरआजमाई करनी पड़ेगी।"

मित्रों ने उस समय उसकी बातों पर विश्वास नहीं किया था। कारण यह था कि वे सबके सब प्रेम के शिकार हो गये थे। पर जिनके प्रेम में वे घुल रहे थे वे सबकी सब जँगलों के सीखचों के उस पार थीं। उस ज़माने के प्रेमियों की किस्मत में अपनी

प्रेमिकाओं के रिक्शो की टक्कर से पायल होना ही बदा था।

उस जमाने मे बालीगज की झील नही थी। होर्दी की झील तो थी, पर उसके किनारे तरुण-तरुणियों को एक साथ घूमने की स्वतन्त्रता

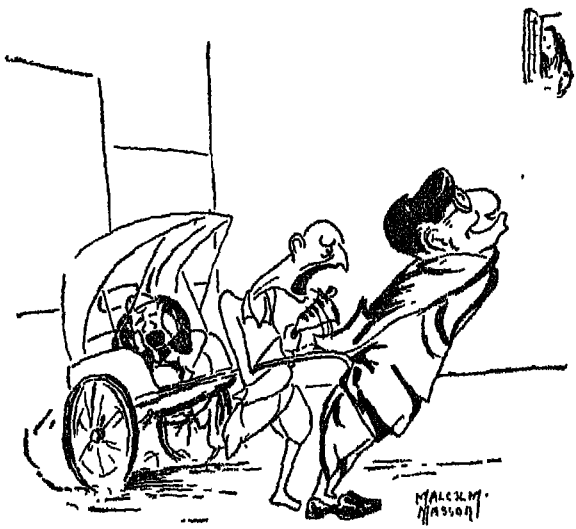

प्रेम में पड़कर रिक्शे की टक्कर भी खानी पड़ती है.

नहीं थी। इस पार से लड़कियों का बेथून कालिज और उस पार से लड़कों का स्काटिश चर्च कालिज एक दूसरे को चुपचाप घूरते रहते थे। इस प्रकार घूरते-घूरते ही प्रेम के सम्बन्ध में लोगों की दृष्टि पैनी हो गई थी।

कौशल्या ने कॉण्टिनेण्टल साहित्य का अध्ययन नहीं किया था, पर उसका मन कॉण्टिनेण्टल ढांचे में ढला हुआ था। उसने सिर हिला-कर और नथुने फुलाकर सुरती चबाते-चबाते मोक्षदा को एक बहुत बड़ी खबर दी। बोली—"जानती हो बहन, तुम्हारा लड़का तो लाखों में एक है, पर वह ईसाइयों के जिस कालिज में पढ़ता है वहाँ लड़के और लड़कियाँ साथ-साथ उठते-बैठते हैं। अब तो बीच में

झील भी नहीं रही। एक ही कमरे में एक साथ पढ़ते हैं!" कह कर उसने देखा कि क्या असर हुआ।

मोक्षदा को यह खबर पहले से मालूम थी। घर के भीतर की सारी खबरें उसे मालूम रहती थीं, साथ ही बाहर की भी बहुत सी बातें उसे मालूम थी। मोक्षदा को यह सब आधुनिक रंगढंग पसन्द नहीं था। पर उसे विश्वास था कि जब तक हृदय-रोग और अम्ल-रोग की बीमारी है तब तक घर का इलाका सुरक्षित है। जब लड़के को गोरों के कालिज में भेजा गया है तो वह ठीक ही रहेगा। स्वदेशी वाले गोरों को गालियाँ तो बहुत देते थे पर अंग्रेज़ी कम्पनी के एजेन्ट की स्त्री मोक्षदा को गोरों में कोई बुराई नहीं मालूम पड़ती थी।

वह बोली—"गोरों का कालिज है। गोरों की धाक है जिससे शेर और बकरी एक ही घाट पानी पीते हैं! तो फिर लड़के और लड़कियाँ एक साथ पढ़ेंगी तो इसमें हर्ज ही क्या है? यह तो मामूली बात है।"

उनको तो वाइफ़ कहना चाहिए.

कौशल्या फूफी बड़ी चतुर थी। उसने फौरन अपना स्वर धीमा कर लिया। स्त्रियों को जब कुछ माँगना होता है तो वे गले की आवाज़ धीमी कर लेती हैं। पर ज्योंही उन्हें मालूम होता है कि वार खाली गया त्योंही उनका स्वर पंचम पर पहुँच जाता है। कौशल्या ने फुसफुसाकर कहा—"तुम नहीं समझ रही हो। विद्या और सुन्दर दो प्रेमिका और प्रेमी थे। उन्होंने मालिन की सहायता से प्रेमसूत्र जोड़ा था। अब विद्याऔर सुन्दर को मालिन मौसी की सहायता नहीं लेनी पड़ेगी।

अब बाग के माली की सहायता के बिना ही चिट्ठी-चपाती चलती रहेगी। और चिट्ठी की भी क्या ज़रूरत, जब कन्हैया और राधा दोनों के सैर-सपाटे के लिए बालीगंज में झील बन गयी है। वही है अब इनकी यमुना। संध्या समय लोग जिनके साथ वहाँ जाते है उनको 'स्त्री' कहने से उनकी मर्यादा की हानि होती है—उनको तो 'वाइफ़' कहना चाहिए।"

मोक्षदा कुछ अविश्वास के साथ बोली—"पर वहाँ तो लोग आते-जाते होंगे। फिर छेड़खानी और मसखरेपन का मौका कहाँ लगता होगा?"

गाल पर हाथ लगाकर कौशल्या ने ऊँची आवाज़ से कहा—"आजकल के लड़कों में शर्म-हया कहाँ है? अब लोग ग्रहण आदि के समय दान-पुण्य कहाँ करते हैं? वे तो बस हर समय गुलछर्रे ही उड़ाते रहते हैं।"

कौशल्या आयी तो थी मोक्षदा को चिन्ता में डालने, पर जब उसने देखा कि मोक्षदा ने उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया तब वह स्वयं ही चिन्ता में पड़ गयी। जब वह समझ गयी कि उसका किया-कराया पानी हो गया, तब वह चिन्तित हो उठने की तैयारी करने लगी। धनी पड़ोसी को नाराज़ भी नहीं किया जा सकता। हर समय कुछ न कुछ काम निकलता रहता है। पर यह भी तो नहीं देखा जाता कि मोक्षदा निश्चिन्त होकर बैठी रहे। इसलिए उठने के पहले कौशल्या ने अन्तिम बाण मारा—"सुना है कि मुन्नू के साथ जिसका सबसे अधिक उठना-बैठना है उस लड़की का नाम है नीहारिका। जब बात मेरे कानों तक आ ही गयी तो मैंने अपना धर्म समझा कि तुम्हें बता दूँ। विशेषकर जब तुम मुन्नू की शादी कर नई दुल्हन घर ला रही हो।"

थोड़ी देर रुककर कौशल्या वापस जाने लगी। जाते समय खाँस-कर मोक्षदा की ओर देखती हुई बोली—"जैसी ईश्वर की मर्जी। फिर भी मैंने सोचा कि तुम्हें यह बात ज़रूर बतलानी चाहिए।"

३

शादी का अर्थ है एक तरह का भडोल। पेशेवर शादी कराने वालों की पाँचों उँगलियाँ घी में रहती हैं। इधर भी खाओ, उधर भी खाओ, फिर नकद रुपये लो सो अलग। यह तो शादी कराने वाले की दृष्टि से हुआ।

रिश्तेदारों के लिए शादी का अर्थ है तरह-तरह की बातें बनाना, खाना-पीना, फेंकना और मौके-बे-मौके ऐसी बात जड़ देना कि हुई-हुआई शादी बिगड़ जाय।

पड़ोसियों के निकट शादी का अर्थ है तीन दिन तक लाउड-स्पीकर से कान के कीड़े निकलवाना और एक जून खाना खा लेना।

इसके अलावा दूल्हे के मित्र भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। पंडितों का कहना है कि दुलहिन चाहती है कि दूल्हा रूपवान हो; उसकी माँ चाहती है कि दूल्हा के पास बैंक-बैलेन्स हो; उसका पिता चाहता है कि दामाद चरित्रवान हो; मित्रगण कुल की ख़बर चाहते हैं और बाक़ी सभी याने बिरादरी वाले मिष्टान्न चाहते हैं।

यह बात बिल्कुल झूठी है, कम से कम इस युग में।

प्रद्युम्न के मित्रों ने तो वधू के कुल की ओर ध्यान तक नहीं दिया। कुल की अगर चिन्ता थी तो वह पुरोहित को थी और वधू के रूप-गुणों का ख़्याल था तो सास और श्वसुर को। प्रद्युम्न के दोस्तों की इस सम्बन्ध में क्या धारणा हो, इसके निर्णय करने के लिए चट-पट एक सभा आयोजित की गयी। अंग्रेज़ सभी मामलों में सभा और सम्मेलन करते थे। फिर ये क्यों न करें? मित्रमंडली के लिए इस प्रकार सभा बुलाना कोई नयी बात नहीं थी। इन सभाओं में बड़े-बड़े व्याख्यान होते थे और न मालूम कितने प्रश्न निपटाये जाते थे। प्रश्न भी ऐसे होते थे, जैसे सहपाठिनी कुमारी घटव्याल का व्यंग्य-चित्र बनाया जाय या नहीं; जब बंगला-साहित्य की कक्षा में अध्यापक 'काव्य

में उपेक्षिता' इस विषय पर व्याख्यान दें तब हाय-हाय की जाय या नहीं, छाती पीटी जाय या नहीं; केवल प्रतिशत ३० छात्र उपस्थित होने पर भी सब की हाजिरी बोली जाय या नहीं; इत्यादि। सभा जब-तब हो ही जाया करती थी, कभी कालिज के मैदान में और कभी पेड़ों की छाया में। ज़रूरी काम न होने पर भी मामूली बातों के लिए सभा बुलाई जाती थी। जैसे कि अगर प्रोफ़ेसर ने बेदर्दी के साथ पढ़ाना शुरू कर दिया या जब वह प्रश्न पूछना शुरू कर दे।

फिर आज तो एक अत्यन्त आवश्यक कार्य पड़ गया था सहपाठी के विवाह का। पर किसी ने प्रद्युम्न की राय जानने की ज़रूरत ही नहीं समझी, न घर में माँ ने और न बाहर दोस्तों ने ही। विवाह तो विवाह ही ठहरा, भला उसमें राय की ज़रूरत! जो मित्र राजनीति में पटु थे, इस सभा में उनका स्वर ही ऊँचा था।

शून्य की तरफ़ घूँसा दिखाकर सभापति ने कहा—"गोरों को न सही, गोरों के पास उठने-बैठने वाले लोगों को मारने का हमने जो कार्यक्रम बनाया है वह इस शादी से खटाई में पड़ जायगा। प्रद्युम्न को इस समय हाथ-ख़र्च के रूप में जो कुछ मिलता है और जिससे हमारी चाय और चाट चलती है, क्या आगे भी चलेगी? वह नहीं चलेगी।"

एक मित्र ने प्रद्युम्न से पूछ डाला—"प्रद्युम्न, सच सच बताना कि जब कलकत्ता टीम और मोहनबागान टीम में मैच होता है तब क्या तुमने कभी गोरों के मुँह के सामने तालियाँ बजाई हैं? कभी नहीं। नेवर नेवर·····"

एक अन्य मित्र ने चोट करते हुए कहा—"सारे देश के उद्धार के बदले केवल एक लड़की के उद्धार से बढ़कर भला वीरत्व क्या होगा? न मालूम कब से तुम से कहा जा रहा है कि सवेरे योगाभ्यास और शाम को कसरत किया करो। वह तो सब चूल्हे में गया, और करने चले शादी! आशा है कि प्रेमाभ्यास का प्राणायाम ठीक तरह करोगे।"

राजीव भी राजनीति के पथ का पथिक था। उसने भी अपनी

तान छेड़ी, बोला—"तुम्हें तो किसी दिन हमने नहीं देखा। नेता, उपनेता, उदीयमान नेता आदि महारथियों को जनता के जूए से बाँध कर काम करने और सभा-सोसाइटी में कुर्सी-मेज़ लगाने में तुम कभी

सवेरे को योगाभ्यास और शाम को कसरत किया करो.

काम नहीं आये। तुमको रिज़र्व लिस्ट में रक्खा था। वहाँ से भी आज से ही तुम्हारा नाम खारिज होता है। जो जाड़े से घबराता है और जो डर से घबराता है, वे दोनों ही बराबर हैं।"

सब लोग हँस पड़े, यद्यपि वे यह नहीं समझ सके कि अन्तिम वाक्य का क्या अर्थ है। उन लोगों ने जानना चाहा कि इसका क्या अर्थ है।

राजीव अपनी कमीज़ के कॉलर को अच्छी तरह उलटते हुए, मानो सर्दी से बचना चाहता हो, बोला—"परके साल बहुत सर्दी पड़ी थी। फिर भी प्रद्युम्न अपने हरे रंग का शाल नहीं ओढ़ता था। माँ के डर से घर से निकलते समय तो ओढ़ता था पर कालिज में उतार-कर रख देता था। एक दिन फिर मैं बोला—'क्यों भइ,सर्दी नहीं लगती? केवल कमीज़ से ही इस साल काम निकाल रहे हो।' प्रद्युम्न ने

गम्भीरता के साथ पुस्तकों से चिपटते हुए कहा—'सर्दी की बात मामूली है, मगर जब कभी याद आती है कि परीक्षा पास ही है तो शरीर पसीने से तर हो जाता है' ।"

राजीव ने फिर उसी का हवाला देकर कहा—"अब तो तुम्हें कमीज़ की भी जरूरत नही पड़ेगी। शरीर यों ही गरम रहा करेगा। पर देखना, कही इतनी अधिक गर्मी न हो कि पिघलकर बह जाओ। बात यह है कि एक से दो होने जा रहे हो, तो गर्मी भी दुगुनी होगी। पर जब श्रीमती जी मायके चली जायेंगी तो फिर ताजिया ठंडा हो जायगा। कुछ भी हो अब तुम बेकार हो गये।"

साथियों में केशव नाम का भी एक लड़का था। उसने तय कर लिया था कि विद्यार्थी-जीवन में विद्या ज़रूरी नहीं है, इसलिए वह दूसरों की विपत्ति में काम आने के लिए व्याकुल था। पर कहने वाले इस विपदबान्धव-समिति के बारे में बहुत कुछ कहा करते थे। संस्कृत के पंडित जी ने अपने चश्मे को नाक से करीब-करीब उतारकर कहा था—"विपदबान्धव शब्द में तत्पुरुष समास ही नहीं है, बल्कि बहुब्रीहि समास भी है।"

लड़के यह सुनकर आँखें फाड़े रह गये थे। बात यह थी कि पंडित जी जब रहस्यपूर्ण मुद्रा में बोलते थे तब पता नहीं चलता था कि वह मज़ाक कर रहे हैं या नाराज़ हो रहे हैं।

पंडित जी ने नाक से चश्मे को ज़रा और नीचे खिसकाया तो चश्मा गिरने से बच गया। फिर आँखों से ब्रह्मतेज फैलाते-फैलाते कहा—"विपदबान्धव-समिति ऐसे लोगों की नहीं है जो विपत्ति में काम आते हैं, बल्कि ऐसे लोगों की है जो विपत्ति के ही मित्र हैं याने विपत्ति लाते हैं। मतलब यह है कि लोगों के चन्दे से चाय-कटलेट का ख़र्च निकल आये, इसी का यह बन्दोबस्त है। सिनेमा, फुटबॉल इत्यादि का ख़र्च भी इसी प्रकार निकल आता होगा। अब तुम लोगों को समास समझने में मुश्किल नहीं होगी।"

जब क्लास ख़त्म हुई तो लोगों ने केशव से पूछा कि आख़िर पंडित जी यह क्या कह रहे थे। तब केशव ने कहा—"बात यों है

कि हमारा एक सदस्य पंडित जी को पहिचानता नहीं था, वह आफ़त का मारा उनके घर चन्दा माँगने पहुँच गया। पंडित जी उसी की खार खाये बैठे थे, सो आज उन्होंने उसी की कसर निकाली।"

यह तो पुरानी बात है। केशव अब तक सभा में चुपचाप बैठा था। वह एकाएक सींग उठा और ताल ठोंककर मैदान में आ गया। बोला—"प्रद्युम्न, तुम घबड़ाओ मत। तुम मजे से शादी करो। मेरी विपदबान्धव-समिति तुम्हारे पीछे-पीछे है। खाना परोसने से लेकर दुल्हन की सहेलियों से चोंच लड़ाने तक के सारे काम हम लोग निपटा लेंगे। यहाँ तक कि चक्रव्यूह भेदकर उत्तरा को अभिमन्यु के घर तक पहुँचाने का ठेका हमारा रहा। तुम कतई न घबड़ाओ।"

समिति के दूसरे उत्साही सदस्य भी सामने आ गये। उन्होंने जेब से दाल-मोंठ निकालकर सब को जगन्नाथ जी के प्रसाद की तरह दो-दो दाने देते हुए कहा—"किसी कोमल हस्त के स्पर्श के बिना ज़िन्दगी ऊसर हुई जा रही है। अपना भला न हो तो कम से कम पड़ोसी का ही भला हो!"

सभा यहीं पर समाप्त नहीं हुई। लोगों ने कविवर नीहार से कहा कि तुम भी कुछ कहो। यह इनकलाब का युग था, इसलिए 'मोनार्की' (एकछत्र राज्य) तो चल नहीं सकती थी। लीडरों का भी बिस्तरा गोल-सा ही था। सब अपने आपको चलाने में विश्वास करते थे। इसलिए चालक या परिचालक, नायक या अधिनायक की ज़रूरत नहीं थी। इस युग में विक्रमादित्य या अकबर के बिना ही नवरत्न हर गली-कूचे में फिरते रहते थे। उनकी कोई कमी नहीं थी।

सब ने नीहार से कहा—"कविवर, तुम भी कुछ कह डालो। मौका भी है, और दस्तूर भी है।"

'कवि' शब्द सुनते ही लोगों की आँखों के सामने एक चित्र खिंच जाता है। लम्बे-लम्बे बाल, ढीला कुर्ता और ज़मीन को छूती हुई धोती की काछ। उम्र चाहे कुछ भी हो, क्योंकि सिनेमा की तारिकाओं की तरह कवियों की उम्र बढ़ती नहीं है। और कविता करना तो बंगाली मात्र का जन्मसिद्ध अधिकार है।

नीहार ऐसा ही कवि था। इसके लिए किसी प्रकार के प्रमाण की आवश्यकता न थी। वे बोले—"आज के शुभ दिन की यही वाणी है कि प्रद्युम्न ही क्यों, सभी लोग शादियाँ करें।"

कविता करना हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है.

इस पर एक ने कहा—"कवि, यह तुम क्या कह रहे हो? अभी तो हमने प्रेम भी नहीं किया और तुम कहते हो कि शादी कर लो! यह नहीं मालूम था कि तुम इतने बेदर्द निकलोगे, कुछ तो रहम करो।"

कविवर बोले,—"तुम्हारे लिए मेरे दिल में इतनी सहानुभूति है कि कह नहीं सकता। विद्या की चर्चा तो कर ही रहे हो, फिर शादी से क्यों घबराते हो? दोनों में फर्क ही क्या है?"

वही साहब बोले—"यह तुमने अच्छी कही। दोनों की साधना कठिन है—यह मैं मानता हूँ। फिर भी क्या दोनों में कोई फर्क नहीं है?"

"फर्क भले ही हो, दोनों में एक ही वस्तु की आवश्यकता पड़ती है। जितना दान करोगे, उतना ही अधिक लाभ होगा। एक लगाओ चार पाओ।"

वही साहब फिर बोले—"तब तो यह बड़े मुनाफ़े का काम है। यह तो चोरबाज़ार से भी अच्छा है।"

कवि ने कहा—"बिल्कुल सही। चोरबाज़ार तो इसके सामने कुछ भी नहीं है। यह तो उससे भी बढ़कर है। यह जुआ है। रातोंरात बन जाओ और रातोंरात बिगड़ जाओ। गदा से शाह और शाह से गदा। यह कायर के लिए नहीं है।"

मित्रों ने चिल्लाकर कहा—"धन्य है! धन्य है! इसके बाद शादी

के अलावा कोई कर्तव्य ही नहीं रह जाता। कविता लिखने की तरह प्रेम या विवाह करना भी प्रत्येक युवक का अधिकार हो जाता है।

प्रेम करना हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है.

कम से कम प्रेम करने का अधिकार तो होना ही चाहिए। और यह भी वह अधिकार जिसे फंडामेंटल राइट (मौलिक अधिकार) कहते हैं।"

लम्बी साँस छोड़कर जगबन्धु ने कहा—"अवश्य!"

उसके मन की गुप्त व्यथा की बात सब लोग जानते थे। उसके माता-पिता ने गाँव में उसके लिए एक शादी तय की थी। वह नीम-राज़ी तो था, पर दुखी इस कारण था कि उसकी पत्नी देहाती हो, यह उसे पसन्द नहीं था। उसके जीवन में कोई विशेष उच्चाकांक्षा नहीं थी। न तो वह परीक्षा में अव्वल आना चाहता था, न वह कोई छात्र-

नेता था, और न कोई कम्यूनिस्ट था, फिर भला शादी से वह क्यों कतराये ?

इस बीच में कवि नीहार ने अपने चुटकुले शुरू कर दिये थे। बिल्कुल मामूली चुटकुले थे। अंग्रेज़ों में तो इनका बहुत प्रचलन है, क्योंकि वे हँसना-हँसाना जानते हैं और चाहते भी हैं। क्योंकि वे अँधेरे में सीने पर पत्थर रखकर चुपचाप लेट नहीं रहते।

नीहार ने सर्वज्ञ की तरह कहा—"सुनो, वे ऐसी हालत में क्या करते हैं ! अंग्रेज़ लड़कियाँ बड़ी चालाक होती हैं। कोई झाँसे में डालकर उनसे शादी कर ले, ऐसा नहीं हो सकता। बड़ी जाँच-पड़ताल और जान-पहिचान के बाद शादी होती है। पर शादी के पहले और बाद को उन्हें भी बड़ी-बड़ी आफ़त झेलनी पड़ती है।"

लोगों ने कहा—"कविवर, इस तरह पहेलियाँ न बुझाओ। जो बात असली है, वह बताओ।" यह कहकर लोग उसको ऐसे घेरकर बैठ गये मानो बड़ी देर के लिए तैयार होकर बैठे हों।

४

नीहार ने कहा—"तो सुनो। शास्त्रों में जिसे उमा की तपस्या बताया गया है, वह अग्रेज़ों में शिव की साधना के रूप में होती है। लड़की मन ही मन यह आशा करती रहती है कि लड़का विवाह का प्रस्ताव रक्खेगा। पर चालाक लड़की कभी यह बताती नहीं है कि वह इस प्रकार की कोई आशा कर रही है। यदि बुद्धू लड़का कुछ कहने पर उतारू हो जाय और लड़की मन ही मन इससे खुश हो, तो भी वह दिखाती यही है कि उसे कुछ परवाह नहीं है।"

इस पर हरिहर ने चेहरा फुलाकर पूछा—"ऐसा करने का कारण क्या है ?

जगबन्धु ने कहा—"पहले सुन तो लो।"

कवि नीहार ने फिर कहना शुरू किया—"यह सब भानमती का खेल है। उस खेल में एक अँगूठी पहनाई जाती है। हम लोगों के यहाँ जब विवाह पक्का किया जाता है तब लड़की को कोई गहना दिया जाता है, पर उनके यहाँ यह उपहार केवल अँगूठी के रूप में होता है। यदि अँगूठी से ही काम चल जाय तो गहनों की क्या आवश्यकता ?"

राजनीतिक राजीव के मुँह पर सन्देह की घटा घिर आयी। उन्होंने पूछा—"अँगूठी से काम चल जाता है ?"

नीहार ने कहा—ज़रूर। उनके यहाँ पूर्व रंग इस प्रकार होता है कि मान, अभिमान और मान-भंजन सब उसी अँगूठी पर हो जाता है। नाराज़ होकर श्रीमती कहती है—'अच्छा, तुम ऐसे आदमी हो ! जाओ तुम्हारे मुकाबले मुझ में कोई कमज़ोरी नहीं है। तुम अपना रास्ता चुन सकते हो !'

'अच्छा, यह बात है ? लाओ मेरी हीरे की अँगूठी !'

इस पर श्रीमती कहती है—'नही, मेरी राय तुम्हारे सम्बन्ध में

बदल सकती है, पर अँगूठी के सम्बन्ध में नहीं !'

यह सुनकर मित्रमंडली में ज़ोर का कहकहा लगा। नीहार ने पहले से अधिक उत्साह के साथ कहना शुरू किया—अभी अँगूठी-पर्व की और बातें तो सुनो ! मान लो कि मंगेतर के साथ फिर एक दिन झगड़ा हुआ। अभी इंगेजमैंट हुए थोड़े ही दिन हुए थे, पर बातचीत बहुत लम्बी हो गयी। बात का बतंगड़ बन गया। अन्त में भावी वर ने ब्रह्मास्त्र छोड़ा—'जब यही बात है तो लाओ, मेरी अँगूठी वापस करो !'

इस पर मंगेतर वाक्य-वाण छोड़ती हुई कहती है—'वापस दूँ ? यह माँग कोई नयी नहीं है। तुम्हारा सुनार पहले ही आकर मुझसे अँगूठी वापस माँग चुका है !'

मित्रों ने कहा—"तो इसका अर्थ यह हुआ कि प्रेम उधार-खाते में चल रहा था !"

नीहार ने हँसकर कहा—सिर्फ़ उधार थोड़े ही। यह तो जानते ही हो कि प्रेम में सब कुछ जायज़ है। बस, एक ही बात बतायी जाती है कि कहीं मँझधार में ही किश्ती डूब न जाय। मित्र भावी दूल्हा से कहते हैं, 'यह इंगेजमैंट कब तक घसीटोगे ? इसको लटकाने में कोई फायदा नहीं, बस तुम लटक जाओ। किस्मत में जो होगा वह देखा जायगा।'

इस पर भावी दूल्हा साहब कहते हैं—'अरे भाई, इतनी जल्दी क्या है ? अभी शादी कर लूँ तो बताओ फिर साँझ कहाँ काटेगी ?'

मित्रमंडली इस प्रश्न के अन्तर्निहित विचार को समझ गयी। वे समझ गये कि अनन्तकाल तक प्रेम में ही भलाई है, विवाह में नहीं।

पर उस भावी दुल्हा का प्रेम अधिक दिन तक नहीं चल सका। एक दिन फिर लड़ाई हुई और अब की बार उसका रूप कुछ भयंकर हो गया। श्रीमती ने डाक-महसूल खर्च करके वी. पी. से अँगूठी वापस भेज दी, और पैकेट पर बड़े-बड़े हरफ़ों में लिख दिया—'सावधान ! इसमें काँच है !'

सब लोग हँस पड़े।

नीहार बोला—"अभी ठहरो, बात अभी पूरी नहीं हुई। अन्त

तक जिसकी कोई उम्मीद नहीं थी वही बात हुई, यानी शादी तय हो गयी।"

सावधान ! अँगूठी काँच की है.

जगबन्धु ने कहा—"समझ गया, फिर क्या हुआ ?"

नीहार बोला—"घबराओ नहीं, ध्यान से सुनो। शादी के लिए

किसी को विशेष निमंत्रण नही दिया गया। शराब का खर्च और

भाग्यशालिनी तो श्रीमती जी की माता जी हैं.

केक का आकार कौन बढ़ावे ? इसलिए शादी गुप्त रूप से हो गई। पर एक दिन राह चलते समय एक पुराने मित्र ने चुपके से पूछा, 'सुनता हूँ कि तुमने शादी कर ली है ? आख़िर वह भाग्यवती कौन है ?

घूँट निगलकर कन्धा हिलाते हुए श्रीमान ने कहा—'श्रीमती जी की माता जी !'

नीहार बोला—समझे नहीं न ? शादी के बाद हनीमून भी समाप्त हो गया। एक दिन श्रीमान ने क्रोध में आकर कहा—'अब समय आ गया है कि मैं तुम्हारे दोषों को थोड़ा-थोड़ा बता दूँ। उसके बिना काम न चलेगा।'

इस पर श्रीमती ने निर्विकार होकर उत्तर दिया—'परेशान न होओ वाउण्डर हनी साहब ! ये सब मैं जानती हूँ। यदि मुझ में दोष न होते तो मैं तुम्हारे ऐसे पिद्दी न पिद्दी के शोरबे को न चुनती !'

इस पर श्रीमान तैश में आकर आगबबूला हो गये। घर से निकल पड़े और रात के अन्तिम पहर में लौटे।

चिड़ियों के परों की बनी हुई नरम रजाई के नीचे करवट लेते हुए श्रीमती बोलीं—'अच्छा तो लौट ही आये ? घर ही सबसे बड़ा ठिकाना निकला ! क्यों ?'

उसी प्रकार नाराज़गी के लहजे में श्रीमान ने उत्तर दिया—'और कहाँ जाता ? सारे रैस्टोरेंट बन्द हो गये थे। एक घर ही खुला हुआ है !'

अगले दिन धूप बहुत उज्ज्वल होकर निकली। पति महोदय ने मज़े में दाढ़ी बनायी, बालों पर कंघी फेरी और इसके बाद कलेन्डर की तरफ़ देखते हुए कहा—'आज विवाह हुए पच्चीस दिन हो गये। यदि पच्चीस साल हो जाते तो सिलवर जुबली मनायी जाती। अभी से मित्र लोग उसका स्वप्न देख रहे हैं।'

पत्नी महोदया इस पर सजग हो गयीं। बोलीं—'बड़ी अच्छी खबर है। चलो, इसी पर एक मुर्गी हलाल की जाय।'

मुर्गी हलाल करने की बात सुनकर पति महोदय बोले—'जो बात पच्चीस दिन पहले हो चुकी है उसके लिए एक मुर्गी को सज़ा

क्यों दी जाय ?'

इस पर पत्नी महोदया सिसकने लगीं। सिसकियाँ तो थीं, पर आँसू नहीं थे। फिर भी कई बार रेशम के गाउन से मुँह पोंछती रहीं। सिसकिया भरती हुई बोलीं—'जब तुम "इंगेज्ड" थे, तब तुम मुझे इससे कहीं अधिक लाड़-प्यार करते थे।'

'बात ठीक है, मेरी शिक्षा-दीक्षा ऐसी रही है कि मैं विवाहिता स्त्रियों की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखता। असली बात यह है।'

यह बात सुनकर श्रीमती आपे से बाहर हो गयीं और कमरे से बाहर चली गयीं। साथ-साथ श्रीमान जी भी निकल गये। अवश्य वे दूसरी तरफ़ ही गये, क्योंकि उन्हें भय था कि कहीं पत्नी महोदया लौटकर न आ जायँ।

५

शादी करके लौटने के बाद पहली दावत हो रही थी, जिसे कहीं-कहीं बर्तन छूने की दावत भी कहते हैं। यह वह मौका होता है जब लोग नयी बहू के हाथ का भोजन खाते हैं। मित्रों का दल टिड्डी-दल की तरह टूट पड़ा था। विवाह मित्रों का नहीं था पर मज़ा दूसरों की ही शादी में आता है। खूब खाओ-पियो, गुलछर्रे उड़ाओ और शोर मचाओ।

सब तरह के लोग आये थे, यहाँ तक कि एक वृद्ध सज्जन और उनके कम उम्र वाले साले साहब भी वहाँ उपस्थित थे। बहनोई साहब रौब दिखाने के लिए टैक्सी पर आये थे क्योंकि यदि साले के साथ ट्राम में आते तो वे मामूली समझे जाते। फिर भी मन में दो रुपये टैक्सीवाले को देने का 'शौक' तो था ही। साले साहब ने गन्द मुस्कान के साथ कहा—"दो रुपये गाँठ से गये तो कोई बात नहीं, जो ठाठ आप यहाँ देख जायँगे वह कभी न देखा होगा।"

बहनोई साहब ने आँखें तरेरीं। बोले—"वाह, मैंने क्या-क्या ठाठ देखे हैं, तुम्हें क्या मालूम ? मैंने अपनी शादी में भी टैक्सी में दो ही रुपये खर्च किये थे।"

"याने ?"

अब इस याने का कोई उत्तर नहीं था, क्योंकि इस बीच में बहनोई साहब को शायद याद हो आया कि साले साहब के पीछे एक और साहब भी हैं, जिनसे निपटना टेढ़ी खीर है। पर ससुर साहब की लड़की के भाई ने प्रसंग इतनी आसानी से समाप्त नहीं होने दिया। बोले—"आपके कहने का शायद यह मतलब है कि दो रुपये की टैक्सी-खर्च के बाद आपको महादुःख का सामना करना पड़ा !"

बहनोई साहब घबराकर बोले—"महादुःख नहीं, महादर्शन हुआ। उस दर्शन से मेरा जीवन भर गया !"

उधर से दो साहबी ठाठ-बाट के व्यक्ति आपस में तर्क करते हुए इधर आ निकले। एक ने अपने चश्मे को सम्हालते हुए कहा—"ओह् गॉड, शादी! मैं इसके एक मील तक के दायरे में भी नहीं जा सकता। 'नाट वाइ ए लॉंग माइल'।"

पर उनके वक्तव्य से यह ज़ाहिर नहीं हुआ कि जिस महिला से उनकी शादी होने की बात थी वह उनके पीछे दौड़ रही है या नहीं। दूसरे साहब बोले—"तो फिर तुम्हारी उस सलिला की कौन गति होगी? 'माई गाल साल' कहते हुए बार लायब्रेरी में तो तुम्हारे मुँह में पानी भर आता था!"

बार लायब्रेरी की कुर्सी की शोभा बढ़ाने वाले मित्र ने अपने पोंशने चश्मे को यथास्थान रख दिया और पाइप को बूट के तने पर ठोंकते हुए कहा—"मेरे प्यारे, तुम मुझे बधाइयाँ दो। बात यह है कि मैं 'ब्लडी' अर्थ में 'हैपियस्ट मैन' हूँ। बात ऐसी है कि परसों रात मैंने सलिला का चालान कर दिया। समझे? 'माइ गाल साल' की शादी में मैं ही 'बेस्ट मैन' बना था।"

"तुम्हारी सलिला की शादी हो गयी और तुम कहते हो कि तुम्हें बधाई दी जाय?"

"हाँ बिरादर, हाँ, मैं बहुत ही सुखी हूँ कि मुझे 'बेस्ट मैन' ही बनना पड़ा।"

शोरगुल में आगे की बातचीत सुनायी नहीं पड़ी, पर इसमें सन्देह नहीं रहा कि साहब बहादुर अपनी 'नाल' को दूसरे के मत्थे मढ़कर बहुत सुखी हुए थे।

इसी बीच लोटन कबूतरों की तरह दो बिगड़े-दिल नवयुवक घोड़ा-गाड़ी से उतरे। यह समझना कठिन नहीं था कि इनमें से एक तो किसी पुराने ठाठ के रईस के कुलप्रदीप हैं, और दूसरे उनके लंगोटिया यार।

दोनों परम उत्साह से यह खोज करने लगे कि दुलहिन किस तरफ़ बैठी हुई है। रईसजादे बोले—"दुलहिन के पिता ने मुझे पचास हज़ार देना किया था।"

अभी मित्र या मुसाहिब शायद नये थे। इस इतिहास से अपरिचित थे। बोले—"क्या बात क्या है? क्या कोई वकील तय कर दूँ?"

रईसजादे ने गिड़गिड़ाकर कहा—"सब तकदीर से होता है। पहले शादी की बातचीत मेरे साथ चल रही थी, अब शादी दूसरे के साथ हुई। पचास हज़ार का दहेज मारा गया।"

गदाधर थोड़ी देर बाद आया था। इस कारण वह कुछ अकेला-अकेला अनुभव कर रहा था। लोग गिरोहों में बैठकर बातचीत कर रहे थे। वह किसी गिरोह में शामिल होने का प्रयत्न करने लगा। घूमते-फिरते वह लोगों की बातचीत सुन सकता था।

एक गिरोह से आवाज़ आ रही थी—"बहुत अच्छी शादी हुई है। दुलहिन देखने-सुनने में अच्छी है। कपड़े-लत्ते, गहना-पत्ता है, इसके अलावा सभ्यता और श्री भी है। दूल्हे के लिए और क्या चाहिए?"

इसके उत्तर में किसी ने बहुत जल्दी से कहा—"तो दूल्हा और क्या माँग सकता है? इसके बाद तो दुलहिन के माँगने की बारी आयेगी, और वह फिर कहीं रुकेगी नहीं।"

एक आवाज़ आई—"क्यों साहब, आप भी तो शादीशुदा हैं, क्या आपका तजुर्बा यही है?"

जिससे प्रश्न पूछा गया था उसने चेहरे को रुआँसा-सा करते हुए कहा—"क्या कहूँ साहब, कुछ कहते नहीं बनता। मैंने न तो रूप के लिए शादी की, न रुपयों के लिए और न कुल के लिए। मैंने तो एक स्त्री के साथ सहानुभूति के लिए शादी की थी।"

किसी ने पिघलकर उत्तर दिया—"अच्छी बात है, अब आपको मेरी सहानुभूति मिलेगी।"

इधर तो यह सब चल रहा था, उधर नई दुलहिन को देवी की तरह सजाकर बैठाया गया था। अभी वह अपने पति तक से बहुत दूर थी, पति के मित्रों की तो बात ही क्या है। पर शोरगुल तथा गाजे-बाजे के कारण किसी को इस परिस्थिति में शिकायत के लायक कोई बात मालूम नहीं हो रही थी। फूलों और गहनों से लदी हुई देवी में

मानवी कहाँ थी ?

प्रतिमा में प्राण नही होता ।

मूर्ति मानवी नहीं होती ।

एक हज़ार बिजली की बत्तियों की मालाओं से सजाया हुआ कमरा फूल, चन्दन, शोभा और सौरभ में स्वर्ग-सा लग रहा था। नई दुलहिन के चारों तरफ़ अमेरिकनों की मोटरों की तरह चमचमाती हुई तरुणियाँ धाराप्रवाह बोलती जा रही थीं। उनमें से जो कुछ अधिक उम्र की थी, वे बातों में अधिक रस लेती हुई मालूम होती थीं। कच्चे अमरूदों के मुकाबिले में गदराये हुए अमरूद अधिक आकर्षक थे।

कुछ अधेड़ स्त्रियाँ थीं। तरुण और तरुणियों के बीच में वे ठण्डे हिमपिंड-जैसी थीं। वे 'डग इन दि मान्जार' पॉलिसी अख्तियार कर रही थीं। न तो उनकी आसक्ति तरुणों पर थी और न तरुणियों पर। फिर भी उनके मिलन में ये बाधा डाल रही थीं।

अधेड़ स्त्रियाँ दूल्हे के मित्रों को ऐसी दृष्टि से देख रही थीं, मानो वे बिना निमंत्रण के चले आये हों। पर तरुणियाँ दूसरे ही ढंग से सोच रही थीं। वे सोच रही थीं कि वे लोग संकुचित होकर दूर-दूर क्यों मँडरा रहे हैं ? वे आगे क्यों नहीं बढ़ आते ?

बात यह है कि अधेड़ स्त्रियों के सोचने का तरीका और है। वे सोचती हैं कि आग और घी को पास-पास नहीं रखना चाहिए। यद्यपि उन्होंने विज्ञान नहीं पढ़ा है फिर भी उन्हें यह पता है कि इन दोनों के पास रहने से गर्मी पैदा हो जाती है।

पर तरुण अपने ही ढंग से सोचते हैं। ट्राम में, बस में अक्सर इन दोनों पदार्थों को एकत्र होने का मौका मिलता रहता है, पर वहाँ गर्मी पैदा होने के बजाय ठंडक पैदा होती है। बात यह है कि हर समय यह डर रहता है कि तरुणी थप्पड़ न मार दे। अवश्य इस मौके पर वह डर नहीं था। स्त्रियों ने अपने चेहरों को हँसी से उद्भासित कर रखा था। खुशी के कारण आज की रात सभी कुछ सुन्दर दीखता है। तरुणियों के मन में यह आशा हो रही थी

कि शायद किसी की हँसी से उनमें से किसी तरुण के जीवन का अन्धकारमय कोना जगमगा जाय। आशा में प्रकाश होता है और इस समय वही प्रकाश चारों ओर व्याप्त था।

मित्र लोग कमरे के सामने पिकेटिंग कर रहे थे। डरिये मत, भय की कोई बात नहीं है। इसमें सुविधा भी है और सम्मान भी। यदि विश्वास न हो तो सत्याग्रह आन्दोलन के पृष्ठों को खोलकर देखिये। उनमें आपको दिखायी पड़ेगा कि स्वतन्त्र भारत के वीर सैनिक उछलकर बाहर आ रहे हैं।

बिस्तरे पर लेटकर पिकेटिंग किये जाइये.

पर हम लोगों ने दूसरी तरह की पिकेटिंग सीखी है। सोचकर देखिये कि जाड़े के दिनों में सवेरे उठना कितना कष्टकर है। ऐसे मौके पर बिस्तरे में लिहाफ़ ओढ़े पड़े रहना ही एकमात्र सत्य ज्ञात होता है। यदि आपकी आत्मा इस बात की गवाही देती है, तो

आप बिस्तरे पर लेटकर पिकेटिंग किये जाइये। पत्नी महोदया चाहे जितनी नाराज होकर ठुमक-ठुमक कर धरम पड, आप उन्हे पुलिस का प्रतीक समझकर तकिये से चिपककर ईश्वर का नाम लेने का बहाना कीजिये।

एक दूसरा उदाहरण लीजिये। गर्मियो की छुट्टी अभी दूर है, पर प्राण छुट्टी के लिए अकुला रहे है, और उधर अध्यापक महोदय इस बात पर तुले हुए है कि कोर्स खतम करके तभी दम लेंगे। ऐसे समय मे आप कालिज की दीवार के पीछे वाले वट-वृक्ष के नीचे बैठकर चने-मुरमुरे चर्वण करते जाइये। चर्वित-चर्वण से यह चर्वण तो कही अच्छा है न ? यही तो अहिंसात्मक असहयोग है।

इसी कारण नई दुलहिन के कमरे के सामने मित्रों ने पिकेटिंग शुरू कर दी।

६

मित्रगण नारी-राज्य में आ गये थे। यदि वे स्त्रियों के व्यूह को न भेद पाते, तो नई दुलहिन के सिंहासन के निकट नहीं पहुँच सकते। उनका कुछ परिचय सुन लीजिए।

पहला मोर्चा मुहल्ले की लड़कियों के साथ लेना पड़ेगा। वे दुलहिन के इर्द-गिर्द व्यूह बनाकर खड़ी हैं। उधर लूची (मैदे की पूरी) और एसेन्स की खुशबू के मारे लोग आवेश में आ रहे हैं, मानो इसी आवेश को तोड़ देने के लिए मुहल्ले के छोकरों का एक गिरोह वहाँ आ गया। उनमें एक से एक ढीठ हैं। मुहल्ले की इज्ज़त बचाने वाली देशभक्ति इनमें कूट-कूट कर भरी है, उसी प्रकार से जैसे दिवाली की संध्या के गुब्बारों में हवा भरी रहती है। बचपन से ही गली-कूचों में, विशेषकर अपनी गली में, इन लोगों ने युद्ध-विद्या का जब-तब अभ्यास किया है। इन वीरों को खबर लगी कि प्रद्युम्न के मित्रों ने नयी दुलहिन के कमरे में घेरा डाल रक्खा है। सुनते ही वे 'रणं देहि रणं देहि' कहते हुए घटनास्थल पर आ पहुँचे।

यद्यपि उनके पास कोई तोपखाना नहीं था, पर उनमें से हरएक का मुँह एक-एक तोप के समान था। कहते हैं कि उनके मुँह के सामने कोई ठहर नहीं पाता था। मुहल्ले के इन तरुणों का नेता नवनीत जितना कोमल था, उतना नवीन भी था। उसने कपट हँसी हँसते हुए कहा—"आप लोग नई दुलहिन को देखने के लिए आये हैं, ठीक है, पर पहले मुहल्ले की स्त्रियाँ और लड़कियाँ दुलहिन देख लें, तब आप लोग तशरीफ़ का टोकरा ले आयें। लेडीज़ फ़र्स्ट · · ·।"

दूसरी तरफ़ से फौरन उत्तर मिला—"तब तो जो लोग लेडीज़-मैन हैं, उन्हें पहले मौका मिलना चाहिए।"

"नहीं! इसका कोई अर्थ नहीं होता। पहले वे, पीछे आप।"

मित्रों ने देखा कि उधर का पलड़ा भारी पड़ रहा है, इसलिए

पीछे से किसी ने वांग लगायी—"केशव, यह तुम्हारे बस की बात नहीं है। नीहार को आगे करो, वही आज का बख्तियार खिलजी बने।"

मुहल्ले के लड़कों के उस पार से, मानो महासमुद्र के उस पार से, आवाज़ आयी। यह कोकिल-कंठी की आवाज़थी—"क्यों बख्तियार की ज़रूरत क्यों पड़ी? क्या आप लोग गौड़ विजय के लिए आये हैं?"—वह मुस्कराई।

इधर से आवाज़ आयी—"अवश्य ही हम गौड़-विजय करेंगे। पाउडर मली हुई गोरी सेना तो पहले ही पीठ दिखा चुकी है। लक्ष्मणसेन की सेना भागी थी, और यहाँ सुलक्षण सेना भागी हुई है। इसीलिए हम हैं गौड़विजयी बख्तियार खिलजी।

इस पर किशोरी हँस पड़ीं और उसके सामने खड़े तरुणों के हृदय में एक लहर-सी दौड़ गयी। इससे अधिक न तो समाज अनुमति देता था और न इसकी सम्भावना थी। समुद्र पार के तमसा (टेम्स नदी) तीर्थ से लौटी हुई लक्ष्मीमणि राय की बात और है, जो मादाम-लकी राय बनकर अपने दूल्हे की बगल में खड़ी होकर शादी का केक काटती हुई अपने मित्रों का परिचय अपने पति से करा सकती हैं। यहाँ तो जितनी बातचीत हुई उतनी ही बहुत थी।

यद्यपि दूल्हे के मित्र दुलहिन से न तो परिचित कराये गये और न इस समय उसकी कोई सम्भावना थी, फिर भी वे वहीं डटे रहे और मुहल्ले के चन्द हमउम्र लोगों के साथ बातें मिलाते रहे। नई दुलहिन को देने के लिए वे जो कुछ उपहार लाये थे वे भी अभी तक दिये नहीं गये थे। अभी तक वे उपहार उनके हाथों में या चादरों के नीचे पड़े हुए थे और वहीं से कुंठित होकर बाहर की दुनिया की ओर ताक रहे थे।

यद्यपि ये लोग एक नम्बर 'स्मार्ट' और वाचाल थे, पर यहाँ पर इतने अपरिचित लोगों के बीच, विशेषकर एक नई दुलहिन की उपस्थिति के कारण, वे भी कुछ दुलहिनत्व प्राप्त कर चुके थे। लज्जा तेल की तरह है। यदि तेल पानी के एक किनारे छोड़ा जाय, तो वह धीरे-धीरे न मालूम कैसे सारे पानी में व्याप्त हो जाता है।

मुहल्ले के एक प्रतिनिधि तरुण ने अपने एक मित्र से पूछा—"क्यों जी मामा, तुम्हारा उपहार कहाँ है ?

जिससे प्रश्न किया गया था उसने पान से लाल ओठों को उलटा कर कहा—"प्रेजेन्ट क्या कोई मामूली चीज है, बड़ी बारीकी से प्रेजेन्ट करना पड़ता है !"

"क्यों, इसमें इतनी लड़ाई की क्या बात है ?"

"तुम समझते हो, नहीं है ? अच्छा तो सुनो। इसी दशहरे के दिन मैंने अरुण के लिए सेन्ट की एक छोटी-सी शीशी और उसके छोटे भाई के लिए एक नकली बन्दूक खरीदी। अरुण के लिए एक छोटी-सी चिट्ठी भी थी जिसमें लिखा था तुम जल्दी से इसे अपने काम में लाना। इसके बाद जो नतीजा हुआ वह मैं ही जानता हूँ।"

"क्यों, क्या अरुण को सेन्ट पसन्द नहीं आया ?"

"नहीं यह बात नहीं। ऐसा हुआ कि उपहार बदल गया। याने जो भाई का उपहार था वह बहन को मिला और बहन का भाई को। और साथ में वह चिट्ठी। बिल्कुल प्रलय हो गयी।"

सब लोग हँस पड़े। वक्ता ने अनुभव किया कि यह हँसी एक हद तक उन पर थी। इसलिए उसने बात बदलने के लिए एक मित्र को जरा एकाएक पहचानते हुए कहा—"कुसुम बाबू, नमस्ते ! मैंने देखा है कि आपने हाल मार्केट से गेन्दाऊदी का एक बड़ा-सा टोकरा खरीदकर मँगवाया है। कितने सुन्दर फूल हैं !"

कुसुम ने प्रतिवाद करते हुए कहा—"ये गुलदाऊदी नहीं, डालिया फूल हैं।"

"वाह साहब, आपने फूल खरीदे और यह नहीं जाना कि आप क्या खरीद रहे हैं ! मेरे मामा का बाग क्रिसान्थिमम से भरा है और आप इन्हें डालिया बता रहे हैं ! वाह !"

"अच्छा, तुम्हारे मामा का बाग क्रिसान्थिमम से भरा है, जरा इसके हिज्जे तो करो।"

उसने अब हिज्जे करने शुरू किये—"आर आइ सी· · ·" सब लोग सुनकर हँसने लगे। इससे हिज्जे करने वाला व्यक्ति यह समझ गया

कि वह गलत हिज्जे कर रहा है, इसलिए वह एकाएक घबरा गया। बोला—"नहीं नहीं साहब, यह डालिया ही है।"

"जो कुछ भी हो, आइये परिचय हो जाय। आप लोग प्रद्युम्न के मित्र हैं। आप लोगों की सेवा करना हमारा धर्म है। इसी दौरान में दुलहिन के इर्द-गिर्द भीड़ भी कम हो जायगी। प्रद्युम्न, आगे बढ़ कर मुहल्ले के दोस्तों से अपने इन मित्रों का परिचय कराओ। आगे, आगे बढ़ते आओ।"

प्रद्युम्न हरएक से सब का परिचय कराने लगा। पर वह हमेशा का लज्जाशील व्यक्ति होने के नाते आज वह और भी लजा रहा था। इसलिए दो-एक परिचय हो चुकने के बाद ही नीहार को परिचय करवाने का काम अपने ऊपर लेना पड़ा। मित्रों का परिचय भी कुछ धुँधले ढंग से हुआ। बात यह है कि कवीन्द्र रवीन्द्र ने नारियों के लिए कहा है कि तू आधी तो मानवी है और आधी कल्पना, इसलिए पुरुष भी स्त्रियों से पीछे क्यों रहें।

"यह हैं निरंजन बाबू। माँ-बाप ने शायद यह सोचकर नाम दिया था कि कम उम्र में ही बहककर दिल पर कोई अंजन न पड़े या वह किसी का मनोरंजन न करे कम से कम जब तक पढ़-लिख न ले। पर मित्रमंडली में इनका नाम नारीरंजन है। यह हमेशा रंगीन कुर्ता पहनते हैं और स्त्रियों का कोई भी इशारा मिला कि रामायण के 'वह' हो जाते हैं। कलियुग की विश्ल्यकरणी याने 'इवीनिंग इन पैरिस' इनकी जेब में सर्वदा रखी रहती है।" इतना कहकर परिचय-दाता ने उसकी जेब से एकाएक वह शीशी निकाल ली और नीहार ने सब को बता दिया कि इस समय यह शीशी आर्यपुत्री के लिए लायी गयी है।

"और यह हैं सौरभ राहा उर्फ़ रासभ राहा। इनको गाने का शौक है, और सो भी पक्के गाने का। जब यह गाते हैं तो ख़ैरियत होती है कि इनके दोनों हाथ हारमोनियम से बँधे रहते हैं, फिर भी स्वर के जरिये से जितना लात-घूँसा इनसे बन पड़ता है, यह मारते हैं। यदि इस कमरे में प्रवेश करने में हमारे सामने कोई अड़चन

आती तो आप लोग विश्वास रखें कि हम इनका गाना करवाते, और फिर हम लोगों को भागने का भी रास्ता नहीं मिलता। खैर, हमारे लिए तो लाइन क्लीयर हो जाती, फिर चाहे कुछ भी हो।"

स्वर के जरिये जितना लाल-घूंसा इनसे बन पड़ता है, मारते हैं.

इस प्रकार से मित्रों का वर्णन चलने लगा। किसी ने यह सोच कर नहीं देखा कि दुलहिन उनकी इस वाचालता को कहाँ तक पसन्द करती है और कहाँ तक वह उसे समझ रही है।

७

एक साहब सिर ऊँचा करके दुलहिन की एक झलक देखने के लिए अकुला रहे थे। उन्हें एक झटके के साथ आगे बढ़ाते हुए प्रद्युम्न ने कहा—"यह जो साहब हाथीदाँत का डिब्बा लिये खड़े हैं यह है मेरे मित्र जगबन्धु चक्रवर्ती।"

इस पर मित्रों ने हँसकर प्रतिवाद करते हुए कहा—"नहीं नहीं, यह हैं 'गजबन्धु चक्रवर्ती'। गजबन्धु होने में प्रमाण की आवश्यकता नहीं। वह इनके हाथ में ही मौजूद है। और सरनाम से पेशे का परिचय उसी प्रकार मिलता है जैसे पारसी धोतीवाला मर्चेन्ट कहलाता है, चाहे धोती के वेश से और व्यापार से उसका कोई सम्बन्ध न हो। हमारे यह मित्र बाँके हैं और बाँकेपन से दुनिया की सारी समस्याओं को सुलझाना चाहते हैं। किसी भी बात की व्याख्या इनसे सुन लीजिये, उसमें वक्रता ही मिलेगी। इनसे यह पूछ लीजिये कि श्याम बाज़ार के बाईं तरफ़ राधा बाज़ार क्यों नहीं हुआ, तो यह उसकी भी व्याख्या करने पर उतारू हो जायेंगे। हमारे यहाँ एक काली केबिन है। उसके साइनबोर्ड में FOWL CHOP के बजाय लिखा है FOUL CHOP, याने मुर्गे की चॉप की जगह लिखा है सड़ा चॉप। हमारे बाँके मित्र का कहना है कि 'विशुद्ध ब्राह्मण' की दुकान में यदि म्लेच्छ भाषा के हिज्जे में एक गलती ही हो गई तो क्या बिगड़ा? विलायती स्वाद के चॉप न मिले तो न सही, स्वदेशी स्वाद के तो मिल ही जायेंगे। इसलिए हमें काली केबिन को अपनाना चाहिए।"

जगबन्धु, जिसकी तारीफ़ की जा रही थी, कुछ बोलने के लिए कुनमुना रहा था। वह एकाएक बोल उठा—"मैं तो यही कहता हूँ कि सत्यवादी होने के कारण उसकी सहायता की जानी चाहिए।"

सब लोगों ने हँसकर उसका समर्थन किया। इतने में रमण ने

आकर रोमन तरीके से कह लीजिये ?। हाइल हिटलर तरीके से, सलाम कुछ दिया, जिसे अभिनादन कहा जा सकता है। उसे देखते ही कवि नीहार गद्गद् हो गया और बोला—"यह है रोमन। पिता-माता ने इनका नाम रमणचन्द्र रक्खा था, पर इनकी दृष्टि पाश्चात्य जगत की ओर लगी रहती है, इसलिए इन्होंने अपना नाम रोमन रक्खा है। कालिज में यह इतिहास पढ़ते हैं, पर आनर्स क्लास के यह परमहंस परम बगुले की भांति सबको यह समझाने की अपचेष्टा करते रहते हैं कि बंगाली और रोमन एक ही गोत्र की दो जातियां हैं।"

इस प्रकार की मलेच्छ बातचीत पर बक्केश्वर के हिन्दुत्व को ठेस लगी। उसने गाल पर हाथ रखकर कहा—"राम राम!"

नीहार बोलता गया—"आप सभी जानते हैं कि मोक्षमूलर नाम के एक जर्मन पण्डित थे। वे सूत्र शिखाधारी पंडित तो नहीं थे, पर उन्होंने यह प्रमाणित कर दिया था कि हम और साहब लोग सब एक ही आर्यवंश से उत्पन्न हैं। इसी तरह हमारे रोमन ने भी यह प्रमाणित कर दिया है कि प्राचीन युग के रोमन और इस युग के बंगाली एक ही थली के चट्टे बट्टे हैं। रोमन ने तो इसे वैज्ञानिक सत्यसिद्ध मान लिया है। फिर भी वह प्रमाण देने की कुछ चेष्टा तो करते ही हैं। वह कहते हैं—'इतिहास से यह तो दो महाजातियां ऐसी हैं, जो सिर पर कोई टोपी आदि नहीं ओढ़ते।' रोमन लोग उत्सव के दिन पत्तों का मुकुट पहनते थे और हम लोग शादी के दिन शोले का मुकुट पहनते हैं। ऐसे महान् आविष्कारक को जल्दी ही व्याख्यान देने के लिए अमेरिका भेजना चाहिए।"

मुहल्ले के लोगों ने इसका समर्थन किया। नीहार फिर कहने लगा—"परमहंस रामकृष्ण ने सर्वधर्म-समन्वय किया था, हम लोग सर्वभाषा-समन्वय पर तुले हुए हैं। फल यह होगा कि न तो बंगाली भाषा और न अंग्रेजी भाषा, दोनों में से एक को भी हमें भली भाँति सीखना नहीं पड़ेगा। यदि हम मातृभाषा के चार शब्द बोलते हैं, तो पाँच अंग्रेजी, दो अरबी, एक तुर्की शब्द भी कह देते हैं।" पीछे से कोई बोला—"भई, जी की बात खोलकर रखदी तुमने। इस दृष्टि से देखा जाय तो

हम बड़ा भारी कार्य कर रहे हैं। पर अपनी इस भविष्य-मुखी प्रवृत्ति के फलस्वरूप हम अपनी भाषा में पारंगत नहीं हो पाते और हमारे देश के छात्र मातृभाषा में फेल भी बहुत होते हैं।"

नीहार ने फिर से रोमन और बंगालियों के प्रसंग को उठाते हुए कहा—"रोमन वेश भी बंगालियों की धोती और चादर की तरह था। वे पहनते थे टोगा और टिडनिक। हमारे यहाँ के देहात के लोग अभी तक घुटनों तक ही धोती बाँधते हैं बिल्कुल रोमन ढंग की। शहरी आदमी लम्बी धोती बाँधकर अपने सामने झाड़ू-सी देते चलते हैं हालाँकि यह मना है। फिर भी यह नया फैशन है।"

इस बीच में हरिहर नाम का एक तरुण सामने आया। नीहार ने उसका परिचय कराते हुए कहा—"यह रहे मि० हरिहर। हम लोग इन्हें अरहर कहते हैं। यह इतिहास के रिसर्च स्कॉलर हैं। रिसर्च में इनके साथ मुकाबिला करे ऐसा आदमी सारे बंगाल में नहीं मिल सकता। 'ओरिजिनल जीनियस' की यह साक्षात् मूर्ति हैं।"

किसी ने पूछा—"इसका मतलब ?"

नीहार बोला—"हरिहर अपने रिसर्च में न तो किसी पुस्तक की ही सहायता लेता है और न किसी प्रस्तरलिपि की। यदि बिना परिश्रम और बिना मूलधन के कारबार करना चाहो तो 'अरहर' के थीसिस पढ़ो। इनका थीसिस है मसूर की दाल पर। इन्होंने साबित किया है कि स्वदेश-प्रेम के कारण हिन्दुओं ने मसूर की दाल का नाम विटामिन की लिस्ट से हटा दिया है। इनका कहना है कि मसूर मिश्र देश से कोई न कोई सम्बन्ध रखता है। इसलिए इसको खाकर स्वदेशी देह की रक्षा नहीं करनी चाहिए।"

अब इसकी अति हो रही थी। इतने में कोई उधर से कह उठा—"दूल्हा जिन पर जान देता है उन नीहारिका देवी का परिचय तो हो जाय।"

इतना कहना था कि सभास्थल पर मानो वज्रपात हो गया। वहीं पड़ोस की स्त्रियाँ युवकों में से अपनी-अपनी कुमारी लड़कियों के लिए मन ही मन दामाद चुन रही थीं। उन्हीं में से एक स्त्री मोक्षदा-

मन्दरी को यह खबर देने को दौड़ी । आगे क्या होगा यह जानने

कराली केबिन.

की उत्सुकता सभी की आँखों में थी पर मुँह पर था बनावटी दुख।

मोक्षदा तक यह बात पहुँचते ही सब स्त्रियों के मुँह पर सहानुभूति छा गयी थी! सभी जानना चाहती थी कि मोक्षदा अब क्या करेंगी।

एक अधेड़ उमर की स्त्री सफ़ेद बालों पर थोड़ी-सी घूँघट खींचती हुई बोली—'हमने पहले ही कहा था कि लड़के को सम्हालो, पर तुमने तो उसे छूट दे रक्खी थी। अब धक्का सम्हालो।" मोक्षदासुन्दरी सन्न-सी रह गई कि जो कुछ हुआ सो हुआ, पर यह भड़ाकोड़ और सो भी इस अवसर पर बड़ा बुरा रहा। स्त्रियाँ तो कानाफूसी में यहाँ तक कहने लग गयीं कि यह नाम परिचित मालूम होता है और हो न हो यह वह एक्ट्रेस तो नहीं है जो 'मिश्र कुमारी' और 'रेशमी रूमाल' आदि नाटकों में काम कर चुकी है। स्त्रियों को एक रोचक विषय मिल गया, और जैसा कि होता है एक ही विषय से शाखा-प्रशाखा के रूप में कई ऐसे रोचक प्रसंग निकलते गये। और दुलहिन की क्या हालत हुई? उसे काठ मार गया। इतने में कवि नीहार सामने आ गया। वह हाथ जोड़कर दुलहिन के सामने खड़ा हो गया और अपना उपहार, एक काम किया हुआ सिन्दूर का डिब्बा, सामने बढ़ाते हुए बोला—"मेरा नाम नीहार है, पर इन लोगों ने मेरा नाम नीहारिका रक्खा हुआ है।"

यह ख़बर भी स्त्रियों में पहुँची और उनकी हालत वैसी ही हुई, जैसे कोई चलने के लिए पैर बढ़ाए और उसके बढ़े हुए पैर में लकवा मार जाय। या कोई कुछ कहना चाहे और उसका मुँह खुला का खुला रह जाय। मोक्षदासुन्दरी इस बीच में यहाँ आ चुकी थी और लोगों ने उनकी तरफ़ देखा तो ऐसा मालूम हुआ कि वे फट पड़ने वाली हैं। सब लोग अचकचाकर रह गये।

फ्रांसीसियों ने जर्मन आक्रमण से बचने के लिए मेजिनो लाइन की रचना की थी। इसी प्रकार मोक्षदासुन्दरी ने अलाय-बलाय से अपने घर की रक्षा करने के लिए एक अव्यर्थ लाइन की रचना की थी। वर्तमान परिस्थिति में बाहर की हवा से बचना बहुत जरूरी था। बाहर से हवा आयी कि उसके साथ-साथ नयी-नयी सभ्यताओं के कीटाणु भी आ गये।

उनकी मेजिनो लाइन.

उनकी यह मेजिनो लाइन क्या थी? वह मेजिनो लाइन यह थी कि वे प्रद्युम्न से निरन्तर कहती रहती थीं कि कालिज में पढ़ो, मित्रों में घूमो, गुलगपाड़ा करो और भी जो

चाहो सो करो, पर सूर्यास्त के साथ-साथ घर के अन्दर अवश्य दिखाई पड़ो। इस लाइन को वे किसी भी प्रकार टूटने नहीं देती थीं।

इसीलिए ज्योंही धरती पर सन्ध्या उतरने लगती त्योंही प्रद्युम्न घर जाने के लिए उसुर-खुसुर करने लगता। और मित्र भी चूँकि ऐसे थे जो लिफाफा देखकर खत का मजमून भाँप जाते थे, इसलिए उसे बनाने लगते। जगबन्धु प्रद्युम्न के मुहल्ले में ही रहता था। बोला—"चलो तुम्हें पहुँचा आयें।"

प्रद्युम्न ने करुण चेहरा बनाकर कहा—"नहीं नहीं, तुम लोग मजे में बातें कर रहे हो। मैं तुम्हारे रास्ते में रोड़ा क्यों अटकाऊँ? मैं आप ही चला जाता हूँ।"

उधर से हरिहर उर्फ़ अरहर ने मटर-सा चबाते हुए कहा—"बेटा, उड़ो मत। दिखा तो रहे हो जैसे माताजी की ज्यादती है, पर मन ही मन लड्डू फूटते होंगे। तुम तो इस प्रकार तड़प रहे हो जैसे मणि खाकर साँप तड़पता है। जगबन्धु, तुम जाओ और इसे मकान के दरवाजे में अन्दर तक कर आओ। देखना, कहीं बैलगाड़ी के नीचे न आ जाय। अब इसे हृदय की नयी बीमारी जो लग गई है!

प्रद्युम्न को बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह लोग क्या कह रहे हैं। बोला—"जानते हो, हमारे सारे खानदान में यह रोग कभी किसी को नहीं रहा।"

"यह तुमने ठीक कहा है। जिस कुल में जल्दी शादी का रिवाज होता है उसमें हृदय-रोग का प्रश्न ही नहीं उठता। पहले से इंजेक्शन जो लग जाता है।"

एक अन्य मित्र बोला—"हमारे मोना भैया इस सम्बन्ध में विशेषज्ञ हैं। विवाह के बाद उनका तबादला आरामबाग में हो गया। आरामबाग तो जानते होंगे? वहाँ मलेरिया के मच्छरों का बहुत आराम रहता है। वह उनके लिए नन्दन-कानन है। यही सोचकर शायद लोगों ने उसका नाम आरामबाग रख दिया है। पर मोना भैया भी अजीब जीवट के आदमी थे। कई दिनों तक तो वे मच्छरों से बिना किसी हथियार के लड़ते रहे। पर जब मच्छरों का पलड़ा भारी

पड़ने लगा तब भैया ने आरामबाग के मच्छरों से पेश पाने के लिए राम का नाम लेकर कुनीन से काम लेना शुरू किया। उठते-बैठते, सोते-जागते, यहाँ तक कि स्वप्न में भी कुनीन चलने लगी। एक दिन रात को भैया ने स्वप्न में देखा कि स्वयं श्रीकृष्ण जी 'मशकसूदन' बनकर तोप दाग रहे हैं। भन-भन करते हुए तोप दगती जा रही थी और मच्छर-सेना में भगदड़ मची हुई थी। तोप की आवाज़ से भैया जाग गये। वे कृष्णजी को थैंक्स देने ही वाले थे कि उनको मालूम हुआ कि यह कृष्णजी का तोपखाना नहीं था बल्कि मच्छरों का तोपखाना था। और वे बाहर से कह रहे थे—'मशहरी के अन्दर छिपा हुआ क्यों बैठा है ? नामर्द कहीं का ! खुले में आये तो दो-दो हाथ हो जायें। हम भूखे हैं और सब शेर हैं'।"

"फिर क्या हुआ ? क्या तुम्हारे भैया ताव में आ गये और बाहर निकलकर दो-दो हाथ करने लगे ?"

"अरे, सुनो तो। न तो वहाँ कुरुक्षेत्र का मैदान था और न 'हृदयदौर्बल्यं' आदि कहकर श्रीकृष्ण उपदेश कर रहे थे, पर मोना भैया का हृदय सचमुच दुर्बल हो गया। वे इतने घबराये कि उन्होंने डाक्टर को बुला भेजा। पर डाक्टर भी ऐसे महापुरुष थे कि वे आये ही नहीं।"

मित्रों ने पूछा—"क्या स्वयं डाक्टर साहब भी मलेरिया में मुब्तिला थे ?"

"नहीं, डाक्टर और वकील इतनी आसानी से काबू में नहीं आते। कहला भेजा कि 'नयी शादी के बाद कुछ घबराहट होती ही है। ठीक हो जायगा।' भैया सुनकर आगबबूला हो गये। बोले—'यह वह शिकायत नहीं है, यह तो दूसरी बात है।' . . . ."

बात को बीच में काटकर जगबन्धु ने सभा भंग करने का नोटिस दिया। बोला—"रहने दो। प्रद्युम्न को जाने दो। देखते नहीं हो बेचारा घबरा रहा है।"

इसमें सन्देह नहीं कि प्रद्युम्न घबरा रहा था, पर घर जाने के लिए नहीं। घर में कैसे क्या होगा, यही सोचकर वह घबरा रहा था। घर

की मैजिनो लाइन के अन्दर घुसते ही प्रद्युम्न घबराने लगा।

मोक्षदा समझती थी कि घर में आते ही लड़का हाज़िरी दे जायेगा। सम्भव है उस समय तरकारी काट रही हों या पड़ोसिनों से बतकही कर रही हों, पर लड़का ज़रूर 'मैं हाज़िर हूँ' सूचक कुछ कह जायेगा। वे जिस प्रकार अपने घर पर शासन करती थीं, वह बंगाल के भाग्य में भी कभी नहीं हुआ था। हिटलर को चाहिए था कि बंगाल की स्त्रियों से शासन-कार्य सीख लेता।

हाज़िरी देकर प्रद्युम्न बरामदे से अपने कमरे की ओर जा रहा था कि इतने में भीतर से आवाज़ आई—"क्या है रे? कैसी चाँद-सी बहू लाई हूँ!"

इसमें सन्देह नहीं कि बहू चाँद-सी ही थी। चाँद की ही तरह स्निग्ध लेकिन मन में आग लगाने वाली। चाँद की भाँति ही अनुभूतिशून्य परन्तु दूसरों के मन को अनुभूतिशील बनाने में शक्त।

प्रद्युम्न अपने विचारों में डूबा हुआ चलने लगा। वह तो चाँद है और मैं चकोर हूँ। मैं उसकी तरफ़ घूरता रहता हूँ, पर वह ऐसे चली जाती है मानो मैं कोई जड़-पिण्ड हूँ। सीढ़ी चढ़ते-चढ़ते वह कुछ शांत हो गया और सोचने लगा कि परिवार-परिजन के अन्दर से भी उसकी चाँदनी छन-छन कर आ रही है। उसने कमरे में प्रवेश करके देखा कि वह वहाँ नहीं है।

धत् तेरे की! इतना बड़ा मकान है, अब खोजूँ तो कहाँ खोजूँ? इससे तो अच्छा यह था कि कोई पर्ण-कुटीर होती तो कम से कम इस प्रकार खोज तो नहीं करनी पड़ती। और न दुनिया भर के रिश्तेदार यहाँ मारे-मारे फिरते, जिनके डर के मारे एक झलक भी मिलनी मुश्किल हो जाती है। शायद इन्हीं रिश्तेदारों के डर से माँ का आँचल पकड़े बैठी रहती है। प्रद्युम्न ने नाराज़ होकर सोचा कि मैं अब क्या करूँ? सम्भव है कि वह माँ की छत्रछाया में पान बना रही हो। इसलिए भंडार वाले कमरे की ही तरफ़ चलूँ, शायद वहाँ कुछ नयी रोशनी मिले। मैं किसी की परवाह नहीं करता। ये रिश्ते-

दार अपने को क्या समझते है ? मैं जाऊँगा ज़रूर । हाँ, एक बात है कि मुझे एक मिनिट का सुख मिलेगा तो उसे एक घण्टे तक शर्म का सामना करना पड़ेगा ।

फिर भी प्रद्युम्न उधर ही पहुँचा । वहाँ इस समय माताजी अपनी बहू के साथ विराजमान थीं । पर माँ के पास भी दुबारा आने का कुछ कारण तो होना ही चाहिए । वह चट से पान माँग बैठा । माँ को बड़ा आश्चर्य हुआ । बोली—"इस समय पान कैसा ? खाना खा लिया क्या ?"

सच तो है । पर जब माँग ही बैठा तो उसका कारण बतलाना भी ज़रूरी था । कारण कोई समझ में आता नही था । इसलिए बनाना पड़ा । बोला—"आज मेरे एक मित्र की बहन की मँगनी थी । वहाँ मिठाई बहुत खा आया हूँ ।"

"यह कैसे हो सकता है ? मल-मास लग चुका है, फिर मँगनी कैसी ?"

प्रद्युम्न घबरा गया । बुरा हो इन पत्रा बनाने वालों का, कहीं मलमास है तो कहीं कुछ है । पता नहीं लगता कि कब क्या होता है । वह पहले से भी अधिक घबरा गया । फिर भी बोला—"वे लोग नये फैशन के हैं । मलमास आदि नहीं मानते । बालीगंज के रहने-वाले है न ?"

माँ ने आश्चर्य के साथ कहा—"बड़ी अजीब बात है, पत्रा नहीं मानते और शादी हो रही है ! कहीं वे ब्राह्म-समाजी तो नहीं हैं ?"

प्रद्युम्न ने सोचा यह अच्छी आफ़त आई । प्रश्नों की झड़ी लगी रहेगी । न मालूम कितना झूठ बोलना पड़े । इसलिए उसने बचाव करते हुए कहा—"दूल्हा विलायत होकर आया है । उसकी शादी कलेन्डर देखकर हो रही है, न कि पत्रा देखकर । खैर, जो भी हो, मेरा क्या ? वह जानें और उनका काम जाने । जल्दी से दो पान लाओ । जी मचल रहा है ।"

कहकर उसने चोरी से दूसरी तरफ़ दृष्टि डाली । पर तब तक जिसकी ओर दृष्टि डाली गयी थी उसने घूँघट के अन्दर ठीक उसी प्रकार से

डुबकी लगा ली थी जिस प्रकार रसगुल्ला रस के अन्दर डूबा रहता है।

इस प्रकार से चुपके-चुपके देखना और अत्यन्त पास होकर भी दूर रहना क्या इसकी तुलना गहन रात्रि में, जंगल पार करते समय अभिसार करने के रोमांस से की जा सकती है ? इसका उत्तर देना कठिन है, क्योंकि जिसे इसका तजुर्बा है उसे उसका नहीं है, और जिसे उसका है उसे इसका नहीं है।

पता नहीं भोक्षदासुन्दरी ने पानवाली घटना का क्या परिणाम निकाला, पर प्रद्युम्न की दुलहिन ने उसका जो अर्थ निकाला वह उसी दिन रात को मालूम हो गया। सुरो ने शिकायत की—"तुम अजीब घनचक्कर हो ! तुम्हें हया-शर्म कुछ भी नहीं ! और फिर तुम मौका-बेमौका भी नहीं देखते। तुम्हें मालूम नहीं कि कौशल्या फूफी आदि महिलाएँ बहुत खिल्ली उड़ा रही थीं। तुम्हारे ये ढंग हमें अच्छे नहीं लगते।"

इसके उत्तर में प्रद्युम्न डटकर बैठ गया। बोला—"तुम्हें क्रोध तो करना चाहिए 'मौसी-फूफी एण्ड कम्पनी' के ऊपर, पर तुम कर रही हो मुझ पर। आखिर मैंने ऐसा कौनसा काम किया जो मुझे नहीं करना चाहिए था ?"

बनावटी क्रोध करती हुई सुरो बोली—"वे तो ऐसे हँसती हैं, मानो कोई भारी भंडाफोड़ हो गया हो।"

प्रद्युम्न बोला—"इसमें सन्देह नहीं कि 'मैं' अब 'मैं' नहीं रहा। पर ताज्जुब तो यह है कि 'तुम' अब भी 'तुम' ही बनी हुई हो। हमारे कालिज के मित्र यह कहते हैं कि ज़रा-सी बात, ज़रा-सी झलक ही पागल करने के लिए यथेष्ट होती है। फिर यह कहो कि मेरी हालत क्या होनी चाहिए।"

सुरो बेचारी सब कुछ समझती थी। इसके लिए न तो महाकाली पाठशाला की अन्तिम श्रेणी तक पढ़ना ज़रूरी था और न यौवन की यज्ञशाला में दाखिल होने की ज़रूरत थी। हमारे ग्रीष्म-प्रधान देश में यह गरमी तो आप ही आप आ जाती है। बचपन में गुड़ियों की शादी से लेकर शिव-पूजा तक जितनी भी बातें होती हैं, सभी धीरे-

धीरे आँखें खोल देती हैं। इसलिए प्रेम की बारहखड़ी पढ़ने के लिए पुस्तक की भाषा की आवश्यकता नहीं होती। कुछ लजाकर वह बोली—"तुम कालिज में पढ़ते हो, मै तुम्हारी सारी बातें समझ नहीं पाती।"

प्रद्युम्न ने चेहरे पर गम्भीरता लाते हुए कहा—"मैं तुम्हें तुम्हारी ही भाषा में सब बातें समझाऊँगा। मुझे किताबी भाषा से प्रेम नहीं है।"

सुरो खिलखिलाकर हँस पड़ी। बोली—"पंडित जी महाराज, आप मेरे लिए कुछ कष्ट न करें। तुम्हारी जो बातें मेरी समझ में नहीं आतीं वे ही मुझे अधिक दिलचस्प लगती हैं। अवश्य ही पुस्तकों में इतनी दिलचस्प बातें नहीं लिखी होतीं।"

"पुस्तकों में कौनसी बातें लिखी होती हैं?"—कहते हुए प्रद्युम्न पास खिसक आया।

सुरो कुछ दूर हट गयी। प्रद्युम्न बोला—"ज़रा पास आओ। मैं कुछ विद्या सिखाना चाहता हूँ।"

सुरो और भी दूर हट गयी। तब तरुण पति ने व्याकुलता को दबाकर कहा—"प्राचीन पंडितों ने प्रिया के मुख की तुलना कमल से की है, पर कमल में काँटे होते हैं, वह कुम्हला भी जाता है और हम लोग बहू की तुलना पुस्तक से करते हैं, जिसमें न तो काँटे ही होते हैं और न वह कुम्हलायेगी ही।"

"पर इसमें पंडितजी की बेंत का भय है।"

"नहीं, वह भी नहीं है, क्योंकि जब दोनों विवाह-मण्डप में एक बात पर सहमत होकर एक साथ आ चुके हैं, तो बेंत का कोई भय नहीं है।"

सुरो सहमकर बोली—"तो इसमें गुरु कौन है और छात्र कौन है? मैं गुरु बनने को तैयार नहीं हूँ।"

"डरो मत, इसमें शिक्षा स्वयं ही चलती है। जिसको जितनी गरज है वह उतना ही आगे बढ़ेगा। जर्मन कवि 'हाइने' यही उपदेश दे गये हैं।"

इस पर सुरो हँस पड़ी—"यह हाय-हाय कौन है?"

यह वह उम्र है कि साथी के मुख से जो बात निकल जाय वह

काव्य बन जाती है। नये प्रेमी के कानों में अपनी प्रेमिका की वाणी जितनी मीठी लगती है, वाल्मीकि, शैक्सपीयर, रवीन्द्रनाथ उससे अधिक मधुर कुछ भी नहीं लिख पाये। इसलिए हाय-हाय शब्द भी प्रद्युम्न के कानों में जलतरंग की मधुर ध्वनि की तरह लगा। वह अधीर आवेग में और भी पास चला गया, इतने पास कि फूलों की माला का व्यवधान भी न रहा। पर सुरो केवल शर्मीली, लजीली तरुणी-मात्र न थी उसमें एक दूसरा पहलू भी था। वह एकाएक पैंतरा बदल कर बोली—"तुम तो इम्तहान की तैयारी कर रहे हो न, क्या इसी का नाम पढ़ना है?"

"हाँ, यही मेरा पढ़ना है। आज छापे की पुस्तक न पढ़कर जीवित पुस्तक पढ़ने को जी कर रहा है।"

"यह कैसी पढ़ाई है?"

"क्यों, क्या तुम्हारे मुखारविन्द को पढ़ना पढ़ना नहीं है?"

सुरो ने तय कर लिया कि वह पराजित नहीं होगी। बोली—"इस पढ़ाई से इम्तहान में कितने नम्बर आयेंगे, यह तो साफ़ जाहिर है।"

"क्यों? इतनी विद्या होगी कि पण्डित लोग भी हार मानेंगे।"

"इस विद्या का क्या नाम है?"

आवेश में आँखें बन्द करके सुरो का आँचल पकड़कर प्रद्युम्न बोला—

"पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ,
पंडित भया न कोय।
ढाई अच्छर प्रेम के,
पढ़ै सो पंडित होय॥"

सुरो उर्फ़ सुरधुनि को याद आया कि उसकी एक सहेली के पति भी शादी के बाद कविताओं में बात किया करते थे। उस समय सहेली को यह मालूम होता था कि उसका पति बड़े आराम से रसगुल्ले खा रहा है। पतिदेव कविता सुनाने में ही व्यस्त थे। पत्नी पर उसका क्या प्रभाव पड़ रहा है यह समझने की कोशिश नहीं करते थे।

सुरो ने मन में सोचा कि चाहे वह कविता समझे चाहे न समझे;

चाहे जवाब दे सके या न दे सके; पर वह किसी दूसरे को भाषा में अपने मनोभाव प्रकट करने को तय्यार नहीं थी। इसके साथ ही उसकी नसों में मधुरता आ गयी पर फिर भी वह टस से मस नहीं हुई। इतने में उसने देखा कि प्रद्युम्न उसके सामने घुटने टेककर बैठा हुआ है और बायें हाथ को सीने पर रखकर दाहिने हाथ को फैलाते हुए कह रहा है—

"अयि बिम्बाधरोष्ठे, मैं घुटने टेककर प्रार्थना करता हूँ कि मुझे आरक्त अधर पर चुम्बन मुद्रित करने की अनुमति मिल जाय।"

सुरो को याद आया कि उसकी सहेली के पति ने भी ऐसा ही किया था। इस पर उसकी सहेली ने जो उत्तर दिया था वह भी उसे याद था। वह एकाएक बोली—"मुद्रित कर लेने की अनुमति है पर प्रकाशित करने की नहीं।"

प्रद्युम्न ने वर ग्रहण करने में विलम्ब नहीं किया। फिर बोला—"प्रिये, तुमने मुझे बिम्बाधर का अमृत पिलाया, अब मैं कम्बुकण्ठ का हलाहल पीकर नीलकण्ठ होना चाहता हूँ। मैं तुम्हें अपने कण्ठ से लगाता हूँ।"

अब इसके उत्तर में कुछ कहा नहीं जा सकता। प्रिया के स्पर्श से जो कवि बनता है वह नीरस कवि नहीं बन सकता। वाल्मीकि क्रौञ्च प्रिया का दुख देखकर कवि बने थे। ऐसे ही प्रत्येक नवीन प्रेमी प्रिया के मुख-स्पर्श से प्रेमी बन जाते हैं। प्रद्युम्न की भी यही दशा थी। आँख बन्द करके उसने बोला—"जिस दिन वधू मिलेगी उस दिन मैं उसे महुआ नाम से पुकारूँगा।" सुरो को अच्छा भी लग रहा था। साथ ही लज्जा भी आ रही थी। बहुत आयास के बाद वह बोली—"तुम मुझे क्या समझते हो, क्या मैं कोई तमाशा हूँ?"

प्रद्युम्न ने रवीन्द्र की कविता में उत्तर दिया—"तुम अधखिली कली हो। तुम आधी मानवी हो और आधी कल्पना।"

६

नये वर-वधू नये पाले हुए तोता-मैना की तरह होते हैं। उन्हें विवाह के पिंजरे में बन्द करके लोग तमाशा देखा करते हैं। सब लोग आकर उसे हिलाते-डुलाते हैं। या यों भी कहा जा सकता है कि विवाह एक भूचाल की तरह है और उसकी कँपकँपी बहुत दिनों तक चलती रहती है। जो लोग इस पिंजरे में फँसे होते हैं उनको चाहे जैसा लगे, पर रिश्तेदारों के मजे रहते हैं।

जब ब्याह की शहनाई बहुत पुरानी चीज़ हो जाती है तब भी बहुत दिनों तक उसकी लहर उठती रहती है, और ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार हमारे रासभ राहा के ध्रुपद की लहर बहुत देर तक कानों से टकराती रहती है।

इसके साथ ही साथ दुलहिन को लेकर गुड़िया खेलना और दूल्हे को लेकर फिरकैयाँ देना जारी रहता है। इसी बीच में दो-चार काँटे चुभा देना या डंक मारना भी हो जाता है। शहद और डंक, काँटे और फूल, मौसेरे-फुफेरे भाइयों का यही स्वरूप है।

मौसेरे-फुफेरे भाइयों तक तो ग़नीमत है, पर मौसी और फूफी के नाते जो रिश्तेदार लगते हैं वे भी टरकना नहीं चाहते। जिसके घर में ब्याह हुआ है वह यदि रुपये वाला हुआ तो और भी मुसीबत हो जाती है। यदि लोग घर की मालकिन के मायके के हों तो उनकी मुफ़्तखोरी बहुत दिनों तक चलती रहती है, क्योंकि वे तो मदद करने के लिए आये हुए होते हैं। जब तक सब नहीं चले जाते तब तक वे डटे रहना अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझते हैं। इसी से अभी तक मोक्षदासुन्दरी के फुफेरे बहिन के चचा आज तक इसी मकान में ठहरे हुए हैं। वह सबके 'रांगा' भैया कहलाते थे।

सारांश यह है कि अभी बहुत से रिश्तेदार डटे हुए थे। उधर प्रद्युम्न लालायित था कि जल्दी कालिज जाना शुरू करे, पर सब

लोग उसमें बाधक हो रहे थे। अजीब दो फंदों में उसकी जान फँसी हुई थी। यदि वह लोगों से यह कहता कि अब मैं कालिज जाना चाहता हूँ तो रिश्तेदार पुनः यह अभियोग लगाते कि कालिज में कोई प्रेमिका है जिससे मिलने के लिए वह व्याकुल है, और यदि वह कालिज जाने में देर करता तो यह डर था कि कालिज पहुँचने पर मित्र लोग उसकी बुरी तरह ख़बर लेंगे।

फिर घर रहने से फ़ायदा भी कुछ नहीं था। दिन भर स्त्रियाँ दुलहिन को ऐसे घेरे रहती थीं कि उसकी हालत अशोक-वाटिका में कैद सीता-सरीखी हो गयी थी। ये त्रिजटा, जटिला और कुटिला उसे एक मिनिट के लिए भी खाली नहीं छोड़ती थीं। दिन भर में एक पलक भी तो एकान्त नसीब नहीं होता था। प्रद्युम्न को इन राक्षसियों पर बहुत क्रोध आता था पर वह कह कुछ नहीं सकता था। रिश्तेदार जो ठहरे! और फिर गुरुजन!

इस प्रकार तड़प-तड़प कर घर में घुलने के बजाय कालिज में चले जाना कहीं अच्छा था।

अन्त में प्रद्युम्न ने निश्चय कर लिया। वह धोबी द्वारा धुली हुई धोती आदि पहनकर घर से निकलने ही वाला था कि उधर से रांगा भैया ने उसे पकड़ लिया। बोले—"अरे, सवेरे-सवेरे किधर जा रहे हो? अभी से गठबन्धन तुड़ाकर चलने लगे?"

रांगा भैया ही क्या, इस मुहल्ले के सभी लोग जानते थे कि पौ फटते ही दुलहिन अपनी सास की छत्रछाया में दबक जाती है। फिर भी मज़ाक करने पर कोई टैक्स थोड़े ही लगा है? दूसरे के दाम पर ज़रा हँस लेने में बुराई ही क्या?"

कुछ लज्जित होकर प्रद्युम्न ने कहा—"कालिज का समय हो गया। आज ग्यारह बजे क्लास है।"

"तो इसमें क्या?"—रांगा भैया हँसी के मारे लोट-पोट होने लगे। बोले—"तुम लोग जैन्टिलमैन-ऐट लार्ज हो। खुशी हुई गये, न खुशी हुई न गये।"

इस बीच में प्रद्युम्न को भी कुछ हिम्मत आ गयी। वह बोला,

इसका मतलब यह है कि आप हमें रस्सी तुड़ाया हुआ बैल कह रहे हैं। रस्सी तोड़ने कौन देता है ? वहाँ तो परसेन्टेड के नागपाश में बँधे हुए हैं। इसके अतिरिक्त अक्सर ट्यूटोरियल क्लासें भी लगती रहती हैं। हमारे अध्यापक नवीन बाबू उम्र में प्राचीन पर सबक लेने में अर्वाचीन हैं। हमेशा सबक लेते हैं।"

रांगा भैया ने सवेरे-सवेरे मोतीचूर और छैना के पन्तुआ से दिवस का सूत्रपात किया था। इसलिए मीठे मुँह से बोले—"यह तो बड़े कष्ट की बात है, पर इसमें चिन्ता की बात कुछ नहीं। हमने तो तुम्हारे लिए उत्तरा ला दी है। उसे सैनिक वेष में नित्य कालिज भेज दिया करो, उसका चन्द्रमुख देखकर उत्तर स्वयं आ जायगा।"

पता नहीं इन बातों के कहने में उनका उद्देश्य क्या था, पर किसी भी बहाने से दुलहिन का ज़िक्र आ जाना प्रिय मालूम होता था। इसमें बड़ा रस था। स्वयं जिस विषय का उल्लेख नहीं कर सकते उसका उल्लेख दूसरे करदें तो बहुत ठीक रहता है। यह ठीक उसी प्रकार है जैसे मूल धन से अधिक खुशी उससे आने वाले सूद से होती है। इसलिए यह सुनकर प्रद्युम्न की बाछें खिल गयीं।

पर कालिज में एक बार तो जाना ही था। विशेषकर तब जब कि कपड़े पहने जा चुके थे। अब यदि मँझधार में रुक जाते तो न इधर के रहते न उधर के। घाट और घर के बीच रह जाने की स्थिति कोई अच्छी नहीं कही जा सकती। भैया से तो किसी प्रकार बच गये पर मौसी-फूफी एण्ड कम्पनी से बचना असम्भव था। पता नहीं, वे किस स्थल को निशाना बनाकर तीर मार दें। तीर लगता तो लगता, नहीं तो तुक्का तो था ही। और पता नहीं उस तुक्के से कौनसा चक्का घूम जाता। इन सारी बातों को सोचकर वह बोला—"आखिर पढ़ना तो है ही। फिर विश्वविद्यालय की तरफ़ से बड़ी सख़्ती है। फेल होने वालों की संख्या दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है। नम्बर के नाम पर ईश्वर का नाम मिलता है। बस, एक दम साइन ऑफ़ दि क्रास।"

इस पर रांगा भैया बोले—"अच्छा यह बात है ? मुझे स्मरण आता है कि 'साइन ऑफ़ दि क्रास' नाम से एक चित्र इन दिनों

चल रहा है।"

"बात एक ही है। वह हालीवुड का चित्र है और यह हमारे कलकत्ते शहर का चित्र है। जब परीक्षा का परिणाम निकलता है तो वह क्लास ही क्लास रहता है।"

भैया बोले—"तो तुम्हे इसकी क्या चिन्ता है? पास हुए तो अच्छी बात है नही तो तुम्हारी बला से। तुम उन लोगो मे थोडे ही

साइन ऑफ़ दि क्लास.

हो जिनका जीवन विश्वविद्यालय के पास और फेल पर निर्भर है। तुम तो उन लोगो मे हो जिन्हे नौकरी की फिक्र नही करनी पड़ेगी। बल्कि नौकरी ही तुम्हारी फिक्र करेगी। पास होते ही नौकरी स्वयंवरा होकर तुम्हारे निकट आ जायगी।"

प्रद्युम्न बोला—"यह सब कहने की बातें हैं। आजकल बड़े-बड़ों को नौकरी के लाले पड़े रहते हैं। कितनी ही समस्याएँ हैं? मैं नहीं चाहता कि जिस किसी तरह लुढ़कते-पुढ़कते परीक्षा की वैतरणी थर्ड डिवीज़न की नाव पर पार करूँ। मैं तो चाहता हूँ कि अब की बार फ़र्स्ट क्लास प्राप्त करूँ।"

इस बीच दिखाई पड़ा कि ननी डाक्टर अपने शरीर-रूपी सारंगी पर सूट चढ़ाये आ रहे हैं। आ भी रहे थे सैनिक ढंग से। वे शायद इस मन्त्र में विश्वास करते थे कि शरीर ईश्वर के हाथ में है पर चाल अपने हाथ में है। चश्मा नाक पर है या नाक चश्मे पर सवार है, यह बताना कठिन था। हाथ में एक हल्का-सा बैग और स्टेथेस्कोप था। दोनों की हालत ऐसी ही हो रही थी कि अब गिरा तब गिरा।

ननी डाक्टर ने पास-फेल के सम्बन्ध में जो बातें चल रही थीं उनका कुछ अंश सुना था। एकाएक बोल उठे—"अच्छे नम्बरों से पास करोगे तो कौन शेर मार लोगे? मैंने इतने परिश्रम से पढ़ा पर क्या हुआ? माता सरस्वती के हंस ने करीब-करीब चोंच मारकर मुझे आधा कर दिया। यहाँ का नहीं विलायत का पास हूँ, पर पूछता कौन है। सब मरीज उसी डाक्टर पतितुंडी के पास जाते हैं जो तीन-तीन बार फेल हो चुका है। वह साथ ही लीडर भी है।"

प्रद्युम्न ने सहानुभूति जताई—"सचमुच ननी डाक्टर बड़े शरीफ़ हैं। वक्त-बे-वक्त उनसे मन की बात भी कही जा सकती है। पतितुंडी तो कई बार मरीजों को भगा देते हैं, और जितना ही वे उनसे दुर्व्यवहार करते हैं उतना ही मरीज उनके पास अधिक जाते हैं। यह कहिए कि मरीजों पर भी वे अपनी लीडरी चलाते हैं।"

प्रद्युम्न को यह अच्छी तरह मालूम था कि इस सम्बन्ध में लोग क्या-क्या कहते हैं। बोला—"डाक्टर साहब, क्या कहा जाय आजकल रोज़ी मिलना भी राजनीति का दाँव ही सा समझिए। यदि आप अच्छे राजनीतिज्ञ हैं तो चाहे पास हों या फेल नौकरी आपको मिलेगी ही। यही नहीं, आपके ऊपर वाले आप से डरेंगे भी। पढ़-लिख कर तो बेगबारो एण्ड स्टील कम्पनी में आपको कोई क्लर्की मिल जाय तो

समझिए कि पुरखों के पुण्य का प्रताप प्रबल था। क्लर्की भी निरी टैम्परेरी यानी सामयिक। बीस साल भी नौकरी कर लीजिए पर आप टैम्परेरी ही बने रहेंगे जिससे कि आपको हमेशा याद रहे—'नलिनी-दलगत जलमतिरलं तद्वज्जीवनमतिशयचपलम्।' हमारा बैरा क्लर्क से अधिक वेतन पाता है और उसका अच्छा सम्मान भी होता है। आजकल की समस्या तो यह है कि वह मेरे पास काम करेगा या नहीं, अथवा मैं उसको बैरा रखूंगा कि नहीं। वही हाल ड्राइवर का है। मेरे बुलाने पर वह आयगा या नहीं, इसका विचार वही कर सकता है, मैं नहीं।"

डाक्टर साहब ने जैसे इन बातों को सुना ही नहीं। बोले—"वोट तो इन्हीं से मिलते है। राजनीति में यही तो चाल की पक्की गोटियाँ हैं।"

प्रद्युम्न इस बातचीत से ऊब चुका था। उसे एकाएक स्मरण हो आया कि वह घर कुछ भूल आया है। वह जल्दी से घर लौटा। पीछे से भैया ने आवाज़ दी—"अरे हाँ, हाँ, यह दिन-दहाड़े क्या करते हो? कुछ तो लिहाज रक्खो।"

नेपथ्य से केवल इतना ही सुनायी पड़ा—"मैं अपना फाउन्टेनपैन भूल आया हूँ। अभी आता हूँ।"

रांगा भैया की आँखों में एक दुष्टता-भरी हँसी खेल गई। उन्होंने डाक्टर को चुपके-चुपके बताया कि फाउन्टेनपैन तो जेब में ही लगा था, अतएव दो और दो चार। हा! हा! हा!

प्रद्युम्न फौरन ही कुछ निराश-सा होकर लौट आया। समझने में कुछ दिक्कत नहीं हुई कि वह स्याही के झरने की तलाश में नहीं गया था, बल्कि किसी और झरने की तलाश में गया था, और वह मिला नहीं इसलिए वह निराश है।

डाक्टर सहानुभूतिशील स्वभाव के थे। उन्होंने प्रसंग बदलने के लिए कहा—"हम मध्यवर्ग के हिन्दुओं को कोई नहीं पूछता। नेता लोग तो जनसाधारण की कसमें खाते रहते हैं। नेतागण लोगों की आँखें मज़दूरों पर, और बहुत हुआ तो किसानों पर सीमित हैं। पर

हम लोगों का कोई नाम-लेवा और पानी-देवा तक नहीं है।"

रांगा भैया मध्यवित्त वर्ग के स्वर्ण-युग को देख चुके थे, वे भी व्यथित हुए। बोले—"सालों ने हम लोगों का नाम रक्खा है 'काष्ट हिन्दू'।"

सुनकर सारगी महाशय एकदम स्ट्रेट हो गये। "काष्ट नहीं, काष्ठ हिन्दू, यानी हम लोगों को उन्होंने लकड़ी बना दिया है। ईंधन हैं तो हमी हैं, छिलेंगे तो हमीं, जलेंगे तो हमीं, मानो हम में जान नहीं है। कुली भी हमसे अधिक कमाता है, और उसे न पढ़ने-लिखने का ख़र्च उठाना पड़ता है और न साफ़-सुथरे कपड़े ही पहनने पड़ते हैं। फिर भी आधुनिक साहित्य में उन्हीं के लहसुनिया बदबूदार शरीर की लोरियाँ गायी जातीं और उनके लिए सहानुभूति के मारे आँसू की नदियाँ बहायी जाती हैं। वोल्गा से लेकर गंगा तक विश्व-प्रेम की धारा बह रही है, पर उस धारा में हमारे लिए कहीं कोई गुंजाइश नहीं है। और इधर लोकतंत्र का यह हाल है कि उसके अंडे को लेकर पतितुंडी की तरह लोग निकलते हैं।"

काष्ठ हिन्दू.

प्रद्युम्न बोला—"आप तो बड़े परेशान हो रहे हैं। चलिये एक कप गरम चाय पी लीजिये।" कहकर वह एक दम अप्रत्याशित रूप से भीतर की ओर चला गया।

वह ऐसे ग़ायब हुआ जैसे गधे के सिर से सींग। रांगा भैया थे तो भयंकर मज़ाक करने वाले पर थे दिलदार। डाक्टर को आँख मारते हुए बोले—"जाओ, तुम अपने मरीज को देखो नहीं तो बहू को खिसकने का मौका नहीं मिलेगा, और इधर हमारे भाईजान का बुरा हाल हो रहा है।"

डाक्टर को बात करने का शौक कम नही था। बोला—"आपने भी तो कभी शादी की थी, पर प्रेम से परिचित होने का मौका शायद आपको नही मिला, और हम लोग हमेशा प्रेम मे पडते है पर शादी का मौका नही लगता। और यह देखिये आपके भाईजान है कि शादी भी हुई और प्रेम मे भी फँस गये। कहिये, रहे न आपसे आगे ?"

रागा भैया ने इस पर आपत्ति की। बोले—"तुम्हारी बात ठीक नही है। हम लोगो ने अपने जमाने मे लाभ और 'लव' दोनों कर लिये।"

"अच्छा-अच्छा," रहस्य की महक पाकर डाक्टर अपने मरीज की बात भूल गया और स्टेथेस्कोप का आलिंगन-सा करते हुए खड़ा हो गया। मानो अपने हृदय की व्यथा की थाह ले रहा हो।

डाक्टर जमते हुए बोला—"अच्छा, उस युग मे भी आप लोग 'जिन खोजा तिन पाइया गहरे पानी पैठ' का अनुसरण करते थे ! डूब-डूब कर पानी पीना खूब चलता था न ? अच्छा यह बताइये प्रेम किससे करते थे ? नथूनी पहने हुई घूँघट वाली से प्रेम भला क्या जमता होगा ?"

हँसकर रांगा भैया ने उत्तर दिया—"हमारे प्रेम का सूत्रपात एक अज्ञात आकर्षण से होता था। कली और फूल में फर्क है—वही फर्क हमारे और तुम्हारे प्रेम में है। इससे अधिक नही। हाँ, एक फर्क यह भी कह सकते हो कि तुम लोग एकदम प्रेमिका के पितृ-गृह में पहुँचकर चाय पीते हो, और हम लोग दूर खड़े रहते थे कि कब पोखरे से पानी लेने आयेगी, और एक झलक मिल जायेगी। कभी-कभी कटहल के पेड़ पर चढ़कर भी बैठ जाते थे। हमें उसी में सुख मिलता था और तुम लोगो से अधिक।"

"डाक्टर आधुनिक बंगाल पर लगाये गये इस लांछन को मानने

के लिए तैयार नहीं थे। बोले—"आपने यह तो देख लिया कि साथ बैठकर चाय पीते हैं, पर उनमें जो व्यवधान रहता है उसे आपने नहीं देखा। आप बंगला उपन्यास पढ़िये तो आपको मालूम होगा कि प्रेम क्या वस्तु है। आप जिसे प्रेम समझ रहे हैं, वह आकर्षण-मात्र है।"

बहुत प्रयत्न करने के बाद अपने को समझा-बुझा कर रांगा भैया ने मान लिया कि हमने अपने ज़माने में जो किया था वह आजकल के प्रेम से भिन्न प्रकार की वस्तु थी। वे दोनों एक आसमान की चिड़िया नहीं हो सकतीं।

यह बात चल ही रही थी कि प्रद्युम्न खिला हुआ चेहरा लेकर लौट आया। मानो अमेरिका की खोज करने के बाद कोलम्बस का जहाज़ लौटकर स्पेन के बन्दरगाह में लगा हो।

"डाक्टर साहब, आपकी चाय अभी तक नहीं आयी? अरे कौन है, चाय ले आओ!" कहते हुए प्रद्युम्न जिस प्रकार फिर भीतर चला गया—उससे स्पष्ट हो गया कि वह चाय की बात बिल्कुल भूल गया था। फौरन ही लौटकर बोला—"आप दोनों के लिए चाय आ रही है। मैं चला, कालिज को देर हो रही है। और हाँ, इस किताब को रखिये, अभी प्रकाशित हुई है, स्त्रियों में इसका बहुत प्रचार है।"

रांगा भैया चश्मा खोजने लगे। इस बीच में उन्होंने उस पुस्तक को डाक्टर के हाथ में दे दिया और कहा—"देखो तो यह कौनसी पुस्तक है?"

डाक्टर ने पुस्तक का एक पृष्ठ खोलकर उसी प्रकार देखा जैसे हलवाई चाशनी में इशारे से उँगली बोरकर देख लेता है कि गाढ़ी है या पतली। डाक्टर ने देखा कि पुस्तक छपी बहुत सुन्दर है—और उसकी कहानी भी बड़ी मजेदार है। पुस्तक मेलोफेन काग़ज़ में लिपटी हुई थी। थोड़ा पढ़कर डाक्टर एकदम उछल पड़े। बोले—"यह उसी ढंग की पुस्तक है जिसका ज़िक्र मैं कर रहा था। बिल्कुल हीरे की खान है। जिस पृष्ठ को मैं पढ़ रहा था उससे ज्ञात होता है कि लड़की ने प्रेम जताकर शादी करनी चाही थी—इस पर

लड़के ने जो उत्तर दिया—क्या आप उसे कटहल के पेड़ पर बैठकर कह सकते हैं ?"

रांगा भैया की आँखें इसी से उज्ज्वल हो गयीं। उन्होंने कहा—"कटहल के पेड़ पर चढ़ना इस युग में चल नहीं सकता। इस युग में तो विलायती चैरी या सेब के पेड़ ही तुम्हें पसन्द आयेंगे।"

डाक्टर साहब बचपन में बहुत अच्छी मित्रमंडली में पले थे। विचार देशभक्ति के थे। इसलिए दिन में दस बार छत पर जाकर डंड-बैठक लगाया करते थे। यद्यपि थे उन दिनों भी सारंगी; तो भी देश का सिपाही बनना था इसलिए साधना चला करती थी। एक दूसरे के बाइसेप्स मसलें देखते थे और आसमान की तरफ़ देखकर कहते थे, 'यही हमारी आजीवन साधना है।'

साधना में सिद्धि बहुत जल्दी प्राप्त हो गयी। कुछ दिनों के बाद छत पर किसी का पता नहीं रहा। बात यह है कि इस बीच में पता नहीं कैसे ब्रिटिश सरकार को इन इनक़लाब करने वालों का पता लग गया और लड़कों के अभिभावकों पर दबाव डाला जाने लगा। उधर लड़के किसी इनक़लाबी जुलूस में अपनी हड्डियों के ढाँचे को लेकर हाफ़ पैन्ट का झंडा बनाकर चल रहे थे।

डाक्टर किसी तरह ऐसे साधकों के दल से छिटक-छिटका कर निकल आये थे। अब जीवन में रंगीनी आने के बावजूद सारंगी जीवन क़ायम था। सूट के अन्दर उनकी दधीचि की हड्डियाँ चर्रमर्र बोला करती थीं। शक होता था कि वे अपने सूट के अन्दर बत्तखें छिपाये हुए कहीं लिये जा रहे हैं और वे बत्तखें जब-तब बोलती हैं। डाक्टर साहब उछलकर बोल उठे—"आपको पता है उस छोकरे ने क्या कहा था ? उसने कहा था—हे मेरी अग्निशिखे, ब्याह-ब्याह सब घपला है, इसमें अपरिपक्व मन की बू आती है। उसकी मर्यादा भी बहुत पहले ही नष्ट हो चुकी है। नदी-नाले संयोग के कारण ब्याह की खूब चली, और गृह-लक्ष्मियों की भी खूब चली। फिर ज़माना मानस-लक्ष्मियों का आ गया। पर वह युग भी ढल गया, अब ब्रेन लक्ष्मी का युग है।"

रांगा भैया की अधेड़ आँखें चमक उठीं। उन्होंने कहा—"लड़की

क्या बोली ? सूक्ष्म प्रेम है न ?"

पुस्तक के पृष्ठ उलटते हुए डाक्टर बोले—"यह लड़की बहुत ही अपरिपक्व और नाजुक मालूम होती है। उसने अपने प्रेमी को जिस प्रकार पुकारा उसी से यह ज़ाहिर है। पहले बीच के युग में भैया कहकर पुकारा जाता था, क्योंकि पहले भैया का सम्बन्ध होता था और फिर प्रेम का सम्बन्ध। पर अब यह ज़माना और भी आगे बढ़ गया है। उसने अपने प्रेमी को पत्र लिखा, जिसमें उसे इस प्रकार सम्बोधित किया—हे मेरे सत्यनाश ! जो कुछ भी हो, सत्यानाश ने उसे एक कविता लिख भेजी, जो उसका 'जीवन वेद' है। लड़के को

यही हमारी आजीवन साधना है.

अफ़सोस है कि यह कविता पुराने छंद में लिखी हुई है। पर उसने यह भी लिखा है कि एक नये ढंग से लिखी हुई कविता शीघ्र ही भेजेगा।

रस-हीन गृहकोश में पड़ा है,
शेली और बायरन,

इन्टलेक्चुअल प्रेम को नहीं,
समझ पाये वे मतिमंद ।

पर मेरा मन पंछी उड़ान
भरता है दूर की,
वास्तविकता से बहुत दूर,
यह ब्रेन का प्रेम है ।
फिर भी इसकी मार है
भयानक मैं मर रहा हूँ,
तुम्हारी स्थूल देह पर नहीं,
लोभ मुझ में है ब्रेन का ।

रवीन्द्रीय प्रेम, वह तो है,
दो कौड़ी का
मेरे सिर की कड़ाही में भुनता
रहता है निराकार रूप ।
मेरा ब्रेन विश्व की सब
रमणियों के पैरों में लोटता है,
मैं हूँ कवि, न कि कुयें का मेंढ़क ।
मैं ऐसे प्रेम में रहता हूँ,
तल्लीन कि कई बार
रिक्शे भी गुजर जाते हैं, मुझ पर से ।

पिता करते हैं गृह में निरन्तर,
ताड़ना, पर यह सोचकर
कि कहीं हो जाऊँ फेल,
सहता सब कुछ हूँ ।
प्रेम है विश्वविजयी,
बस यही है प्रार्थना कि

हर डाक से मिल जाये तुम्हारा,
पत्र ब्रेन-वेव-समन्वित
बस इतनी सी रखना दया हम पर,
नहीं तो कविता का शील्ड
जीत ले जायेगा कवि
जान 'मेसफील्ड'।"

रांगा भैया यह सुनकर चिन्तित हो गये, अवश्य ही उन्हें अपनी स्त्री की बात याद आ गयी होगी, पर इस चिन्ता को दबाकर उन्होंने इस घर के दूल्हा और दुलहिन की बात चलायी। बोले—"जैसी हवा बह रही है उससे तो यही मालूम होता है कि पुराने ज़माने की एक भी बात नहीं रहेगी। पर ग़नीमत है कि अब भी इस घर में वही पुरानी आबोहवा मौजूद है। साम ने अपनी चाँद-सी बहू को गले से लगा रक्खा है, मानो वह कोई गुड़िया हो। और हमारे भाई की सूखे मैदान में ही ऐसी हालत हो रही है, मानो वह मँझधार में डूब रहा हो। तुम इस पुस्तक की अग्निशिखा और सत्यानाश वाली हवा इस घर में बहा दो तो अच्छा रहे। क्या यहाँ तुम बालीगंज की आबो-हवा पैदा कर सकते हो?"

डाक्टर गम्भीर होकर बोले—"आप इन झगड़ों में न पड़ें। घर की मालकिन दोनों के बीच में चाहे जितनी बड़ी दीवार कर दें, मुझे विश्वास है कि प्रद्युम्न उसमें कहीं न कहीं सेंध फोड़ ही लेगा। मुझे तो आप ही के लिए कुछ चिन्ता होती है।"

"मेरे लिए चिन्ता क्या? मतलब? मतलब?"—रांगा भैया ने नाक पर से चश्मा उतार लिया और आश्चर्य के साथ देखने लगे।

"जी हाँ, आप ही के लिए चिन्ता हो रही है। आपकी जवानी ढल गयी, पर क्या हुआ। तलवार पुरानी हुई तो क्या, काट तो वही है! बुड्ढे हुए तो क्या, ठाठ तो वही हैं! आपको तो कुछ हानि नहीं हुई। प्रेम को तो मन की उम्र से नापा जाता है। आपने अब तक किसी से प्रेम नहीं किया पर आँख लड़ने में देर क्या लगती है?

कसूर आँखो का होगा और छुरियां चलेगी दिल पर। जरा आख-कान खोलकर रखिये, फिर न मालूम किस वेष मे । इस विराट कलकत्ता शहर मे नित्य-प्रति लोग क्या से क्या हो रहे है ! बस, सजग रहिये। न मालूम कब प्रेम आकर आपके दरवाजे पर ठक-ठक करने लगे।"

देर हो रही थी, इसलिए ननी डाक्टर भीतर चले गये। पर रागा भैया सिर पर हाथ रखकर बैठ गये। सचमुच उनका जीवन व्यर्थ गया। ओह प्रेम का नाम सुनते ही रोमाच हो आता है। इसमे कितना रोमास है, पर किसके साथ प्रेम करूँ ? मेरी राधा कौन है ? अपनी प्रौढा पत्नी को कभी राधा-रूप मे देखा नही। इन बातो को सोचते हुए रागा भैया ने उर ओर लज्जा के मारे जगले का पर्दा खीच लिया।

परन्तु रिक्शा किधर है ? कलकत्ते का वातावरण प्रेग के लिए उपयुक्त होता जा रहा है। तगेदिक और मोतीझरा की तरह प्रेम

के कीटाणु भी आबोहवा में हर समय फिरते रहते हैं, यहाँ तक कि ट्रामों पर भी नोटिस लगे रहते हैं—'प्रेम और पाकेटमारों से होशियार'। ऐसे वातावरण में भला प्रेम से कौन बच सकता था ?

११

एक दिन रांगा भैया धीरे-धीरे ऊपर के तल्ले में सीधे प्रद्युम्न के कमरे में पहुँच गये।

रांगा भैया को इसके लिए किसी परमिट की आवश्यकता नहीं है। बात यह है कि वे रांगा भैया हैं। घर के आदमी जो ठहरे! साक्षात् नातेदार!

वे जिन बातों को मज़ाक में कह जाते हैं, उनकी चौथाई भी कोई कहे तो लेने के देने पड़ जायँ मानो महाभारत ही अशुद्ध हो जाय।

रांगा भैया ने देखा कि प्रद्युम्न चुपचाप कमरे के एक कोने में बैठकर एक पुस्तक के पन्ने उलट रहा है। सवेरे उनका किस प्रकार की पुस्तक से साबिक़ा पड़ा था, यह वह नहीं भूले थे। इसलिए उन्होंने मान लिया कि यह भी कोई प्रेम-व्रेम सम्बन्धी पुस्तक होगी।

वे ज़रा मुस्कराते हुए आगे बढ़े, बोले—"क्यों भैया, क्या इसमें भी प्रेम और रूप की बातें हैं?"

जल्दी से सम्हलकर प्रद्युम्न बोला—"नहीं, नहीं, ऐसी कोई बात नहीं। प्रेम और रूप के अलावा संसार में और भी बहुत सी बातें हैं।"

गंज पर हाथ फेरते-फेरते दादाजी दुःख के लहज़े में बोले—"हम लोग किस प्रकार ठगे गये यह अब मालूम हो रहा है, हमारे ज़माने में ये बातें? नहीं थीं।"

"कौनसी बातें?" ज़रा बताइये तो!"

दादाजी हँसकर बोले—"कहूँ? अच्छा तो सुनो, अब ऐसा मालूम होता है कि सारा कलकत्ता प्रेम में पड़ने के लिए अकुला रहा है। प्रेम के कीटाणु भी टी. बी. और टाइफ़ायड की तरह सर्वत्र मँडरा रहे हैं।"

प्रद्युम्न ऐसा बन गया मानो यह बात उसके लिए बिल्कुल ही नयी हो।

दादाजी कहते गये—"यक़ीन नहीं आता ? असली बात यों है कि कलकत्ते के लोग प्रेम भले ही करें पर वे प्रेग करने के साथ प्रेम करते हैं। नहीं तो आधुनिकता में बट्टा जो लगता है।"

"तो एक ही शाम में आपकी जानकारी इतनी बढ़ गई ! 'एकदम अग्निवाण है' क्या कवीन्द्र रवीन्द्र ने आपके लिए ही वह गीत लिखा था ?"

"अच्छा, अच्छा, यह बात !"—कहकर दादाजी फूले न समाये। "तुम्हारे कवीन्द्र जी ने अग्निवाण पर सिर क्यों खपाया ये तो वे ही जानते हैं। पर मैं तो देख रहा हूँ कि इस युग में बिना शादी किये भी प्रेम किया जा सकता है। यह बड़ी सुविधा की बात है। तुम्हारे अग्निवाण में आँच कुछ-कुछ है, पर जलन नहीं। पुष्पसार में महज़ शहद है, काँटा नहीं। तुम लोग बड़े मज़े में हो।"

कहकर दादाजी ने प्रद्युम्न के कानों के पास मुँह सटाते हुए कहा—"आज मोटर में सवार होकर दोनों लेक के किनारे जाओ न। एक चक्कर काट आओ, कबूतर और कबूतरी की तरह। अहा !"

फिर भावुकता में विभोर होकर दादाजी बोले—"पिंजरे का पंछी जंगल में घूम रहा है, यह सोचकर भी खुशी होती है।"

प्रद्युम्न ने शरारत-भरी हँसी हँसते हुए कहा—"पर मालूम तो ऐसा होता है कि सुख आपका ही है।"

दादाजी खुशी से फूलकर कुप्पा होते हुए बोले—"तुम लोगों का सुख सोचकर ही मुझे सुख होता है, मूलधन के मालिक तो तुम हो, पर सूद का आनन्द भी कुछ कम नहीं है। वह मेरा है।"

प्रद्युम्न अजीब-सा मुँह बनाकर कुछ सोचने लगा।

पर दादाजी तैयार होकर आये थे, बोले—"बात यह है न कि माँ से कहते हुए झिझक रहे हो। पर उन्हें बताने की ज़रूरत ही क्या है ? यदि परिस्थिति ऐसी-वैसी पड़ जाय तो माँ से मोर्चा लेने के लिए मैं हूँ। सब कुछ समझा लूँगा। तुम निश्चिन्त रहो। स्कूल

के सामने जो कचालूवाला बैठता है, वह जैसे अपने रसों की पेटी में खटाई का रस रखता है जिससे वह ग्राहक की जीभ को समझाता है, वैसे ही ज़रूरत पड़ने पर मैं तीखा, कड़वा, खट्टा सब रसों से तुम्हारी माता जी को समझा सकता हूँ।"

"आपकी बात पूरी-पूरी पल्ले तो नहीं पड़ी, पर यह समझ गया कि एक उपन्यास पढ़कर ही आपकी बातचीत में काफ़ी रंगीनी आ गयी है। ख़ैरियत यह है कि अभी आपने रबड़ छन्द की रचनायें नहीं पढ़ीं, नहीं तो पता नहीं क्या उत्पात मचाते ?"

"यह न कहो भैया ! मैंने उन्हें पढ़ा भले ही न हो पर गुना है, जिस प्रकार लिफ़ाफ़ा बिना खोले ही ख़त का मज़मून भाँप लिया जाता है। मौक़ा पड़ने पर मैं उन्हें ऐसे समझा लूँगा कि साँप भी मरे और लाठी भी न टूटे। वे समझ ही नहीं पायेंगी कि उनके हिस्से में छाछ आ रही है या मक्खन, बस वह मेरा बिलोना ही देखती रह जायेंगी। अन्त तक वह तुम दोनों के इस दिन-दहाड़े अभिसार के मामले को मुझ पर छोड़कर सोने के लिए चल देंगी।"

प्रद्युम्न को इससे कोई विशेष हिम्मत नहीं बँधी, बोला—"पर अगले दिन सवेरे क्या माजरा रहेगा ?"

"अगले दिन सवेरे ?"—दादाजी ने आश्चर्य से पूछा। "सवेरा आयेगा ही क्यों ? एक दम दिन चढ़ आयेगा। माँ होंगी पूजा के कमरे में और तुम होगे गुसलख़ाने में। वे होंगी भंडार में और तुम होगे कालिज में। फिर झमेला काहे का ?"

फिर भी प्रद्युम्न कुछ आश्वस्त नहीं हुआ, बोला—"बकरे की माँ कब तक ख़ैर मनायेगी ? एक न एक समय माँ का सामना होगा ही।"

"हाँ, हाँ सामना तो होगा। पर तुमने कभी न कभी सिनेमा तो देखा ही होगा। कम से कम नाटक तो देखा ही होगा। सीना फुला-कर नाटकीय ढंग से कह नहीं सकते कि सारी ग़लती दादाजी की और उस रांड मोटर की है।"

"मोटर की ?"

"इसमें आश्चर्य क्या है ? यदि मोटर तुम्हें फूफाजी के या

मौसाजी के घर के बजाय लेक के किनारे ले जाय, तो इसमें दोष किसका है ?"

"नहीं दादाजी, आपकी योजना ठीक नहीं है। नाटकों में यह सब भले ही चले, पर माँ के निकट चाल नहीं चल सकती।"

दादाजी बोले—"यह भी कोई बात हुई ! सिनेमाघरों के सामने टिकट ख़रीदने वालों की लम्बी कतारें लगी रहती हैं। टिकट पाने के लिए पूरी तपस्या और साधना करनी पड़ती है। टिकट मिल गये तो पहले दाख़िल होने के लिए लोग कितनी वीरता दिखलाते हैं। यदि मुल्क आज़ाद हो तो इन्हीं में से आज़ाद भारत के सिपाही भर्ती किये जायँ तो बस सारा काम बन जायगा।"

"यह सब तो हुआ, पर इससे मेरा क्या बनता-बिगड़ता है ?"

अब दादाजी कुछ कड़वे स्वर में बोले—"प्रेम-व्रेम तुम्हारे वश की बात नहीं है। अभी उस दिन की बात है कुछ नौजवान सिनेमा-घर से निकल रहे थे। वे आपस में कह रहे थे कि जीवन का रहस्य नायक-नायिका का अभिनय देखकर ही समझ गये थे ! उनकी तरह हमें भी कवीन्द्र की भाषा में कहना है कि मेरा प्रेम न तो भीरु है और न कमज़ोर।

प्रद्युम्न मुस्कराकर बोला—"दादाजी, तुम्हारा तो सत्यानाश हो चुका है।"

दादाजी हार मानने वाले जीव नहीं थे। खुशी से उछलकर बोले—"हाँ मेरी पाँचों उँगली घी में रहती हैं, पर शुरू में सिर कढ़ाई में ही रहता है....."

बातचीत चल ही रही थी कि मोक्षदा गला खखारती हुई आ पहुँची बोली—"कौन हैं चाचा जी ?"

दादाजी चौंक पड़े। जल्दी से चश्मे को खींचकर नाक के बीच में कर लिया, मानो भाँप रहे हों कि परिस्थिति क्या है। साथ ही स्मरण हो आया कि वे अभी-अभी प्रद्युम्न को साहसी बनने की सीख दे रहे थे। बोले—"अभी उधर माँ और बेटे में कुछ बातचीत हो रही थी, उसी का ज़िकर था।"

मोक्षदा बैठ गई। दादाजी को कुछ हिम्मत हुई। वे माँ-बेटे की काल्पनिक बातचीत सुनाने लगे, मानो लड़के का कोर्टमार्शल शुरू हुआ—

माँ—"क्यों बेटा, तुम्हें क्या हो गया है?"

"कुछ भी तो नहीं हुआ माँ, अब की बार पास ज़रूर हो जाऊँगा।"

माँ—"मैं पास होने की बात थोड़े ही कह रही हूँ। पास होना तो तक़दीरी बात है, तक़दीर में होगा तो हो ही जाओगे। मैं तुम्हारी निजी बात पूछ रही हूँ। तुम्हारे तकिये और बिस्तरे का क्या हाल हो रहा है? क्या आजकल सोते नहीं हो?"

"क्यों नहीं सोता हूँ। मेरा बिस्तरा तो साल भर से लगा ही है। जब नये साल में घर की पुताई होती है, तब शायद फिर से बिछता है। मुझे क्या? चादर, तौलिया, गिलाफ़ बदल गया तो अच्छी बात है, नहीं बदला तो भी कोई बात नहीं। मेरा ऐसा सौभाग्य कहाँ कि रोज़ बिस्तरा बिछाया जाय और कमरा भी साफ़ हो। ख़ैरियत यह है कि कमरे में फैन है, नहीं तो हाथ वाला पंखा चलाना पड़ता तो मालूम होता। रहा सोना—सो मेरा सोना और जागना सब बराबर है। घर और बाहर दोनों मेरे लिए बराबर हैं। 'जैसे कंता घर रहे तैसे रहे विदेस।' शालिग्राम शिला का सोना और बैठना एक-सा ही है।"

माँ—"अच्छा, नींद नहीं आती तो सिर पर ज़रा भैया की तरह जवाकुसुम तेल लगा लिया करो। उससे सिर ठंडा रहेगा। इसके अलावा अच्छी तरह स्नान किया करो।"

"नहाना तो है ही, ज़िन्दगी में और धरा भी क्या है? घर का नल मेरे लिए ख़ाली कौन करे? इसलिए जब जी में आता है, तो मुँह-अँधेरे ही म्युनिसिपैलिटी के नल के नीचे जाकर 'नटराज-नृत्य' कर आता हूँ।"

माँ—"नटराज-नृत्य क्या बला है?"

"इसे 'ओरियन्टल डान्स' भी कहते हैं। सब के नसीब में इसका चांस नहीं आता। इसके अलावा नृत्य करना भी बहुत कठिन है। बात यह है कि यह चतुष्पदी है। पहले लोग यह जानते थे कि नृत्य द्विपदी होता है और विवाह सप्तपदी होता है, पर आधुनिक युग का यह नृत्य

चतुष्पदी है, क्योंकि इसमे हाथ-पैर दोनो चलाये जाते है। और विवाह को तो मैने परस्मपदी-रूप मे ही देखा है।"

म्युनिसिपेलिटी के नल के नीचे जाकर 'नटराज-नृत्य' कर आता हूँ.

माँ—"अच्छा यह सब तो हुआ। अब मसखरापन छोड़, और यह बता कि अच्छी तरह खाना-पीना क्यों नही खाता ? बहू कह रही थी कि तू कभी खाता है और कभी नहीं खाता। यह क्या बात है ?"

"जैसे तुम्हारी बहूजी सच्ची खबर ही रखती हो ! मेरा खाना तो ऐसा है जैसे महाराज का फुटबॉल खेलना।"

माँ—"क्यो इसमे महाराज का क्या काम है ?"

"क्यों, वे ही तो सब कुछ करते हैं। जब कालिज का वक़्त होता

है तो मैं चिल्लाता हूँ—'महाराज ! खाना लाओ।' इस पर महाराज थाली पर चावल का फुटबॉल बना देते हैं, फिर उस पर ज़रा दाल छिड़क

मेरा खाना तो ऐसा है जैसे महाराज का फुटबॉल खेलना.

देते हैं, जिससे मालूम पड़े कि मामूली फुहार हो गयी है। फिर थाली को पेनल्टी किक लगाकर मेरे सामने रवाना कर देते हैं। खाऊँ तो वाह वाह, न खाऊँ तो महाराज की बला से ! यह 'थ्री चियर्स फ़ॉर कटक बगान' फुटबॉल खेलना नहीं तो क्या है ? फुटबॉल ही नहीं यह तो मेरी जान से भी खेलना है।

मोक्षदा ने बहुत सहन किया, बोली—"तो चाचा, तुम दादा और पोते मिलकर यही सब पर-चर्चा किया करते हो।"

दादाजी भड़क गये। सवेरे ब्रेन के द्वारा प्रेम-नामक पुस्तक के कारण आत्म-चर्चा करने पर पकड़े गये थे, और अब यह आफ़त आयी।

प्रतिवाद करते हुए बोले—"नहीं, नहीं, जिस घर में तुम्हारी तरह सुगृहिणी नहीं है, उस घर को मैं घर ही नहीं मानता। और फिर उस घर और धावे में फ़र्क़ ही क्या है ?"

कहकर दादाजी सटक गये। जाते समय जैसे प्रद्युम्न को कह गये—"कभी मोहनबागान के लोग थे खिलाड़ी। उनका कोई मुकाबला कर सकता है तो बस उड़िया महाराज। उनके रसोईघर के खेल ने सारे कलकत्ते को सिर पर चढ़ा रखा है।"

इतनी देर में मोक्षदा को ख्याल आया कि वह यहाँ से हटेंगी तभी सुरधुनि को यहाँ आने का मौक़ा मिलेगा। इसलिए वह धीरे से उठ गयीं। जाते समय अपने हाथों से जंगले के पर्दे भी खींच गयीं।

तनिक देर बाद ही सुरधुनि वहाँ आ गयी। उसकी आँखें कड़वा रही थीं। जम्हाई लेते-लेते किसी प्रकार सोने के लिए तैयार हुई। वह गिड़गिड़ाती हुई बोली—"अजीब बात है, तुम लोगों में से किसी को नींद नहीं आती क्या ?"

प्रद्युम्न फ़ौरन ताड़ गया। हवा को कुछ हल्का करने के लिए बोला—"मेरा प्रेम भीरू या कमज़ोर नहीं है ?"

"भला इसके क्या माने हुए ? क्या आप इतने बड़े प्रेमी हैं कि आपको नींद की ज़रूरत ही नहीं होती ?"

हँसकर प्रद्युम्न बोला—"देखो, मैं इस युग का नाइट हूँ, और तुम मेरी प्रिया हो। मेरा कहना है···नींद ? नींद क्या बला है ? नींद तो उन लोगों के लिए है जो प्रेम नहीं करते। मैं तो बस डटा रहूँगा। केवल आँखों की पँखुड़ियाँ ही नहीं सारी पृथ्वी को तुम्हारे पैरों के नीचे बिछा दूँगा।"

सुरधुनि सिर हिलाने लगी मानो वह इस प्रकार प्रद्युम्न के प्रेम की थाह ले रही हो।

इस पर वह ढीठ नायिका-सी बोली—"तुमने इसमें कौनसी नयी बात कही। मेरे पैरों-तले तो पृथ्वी यों ही मौजूद है। रहा तुम्हारा हृदय, सो आजकल उसका कोई मूल्य नहीं है। माँग और पूर्ति के नियम के अनुसार उसका मूल्य बहुत घट गया है। तुम्हें जिस चीज़

की ज़रूरत है, वह है एक घर।"

आधुनिका से इस प्रकार अर्थशास्त्र की बातें सुनकर आधुनिक नाइट ने अनर्थ की सूचना देखी। फिर भी तुर्की व तुर्की बोला—"पर प्रेम तो किराये के मकान में भी किया जा सकता है। प्रेम में वह शक्ति है कि बालू में भी फूल खिला सकता है।"

सुरधुनि इतनी बुद्धू नहीं थी, बोली—"बालू में तो फूल के पौधे नहीं पनपते, काँटों के झंखाड़ ही पैदा होते हैं, इसके अलावा तुम्हारा कोई अलग माहवारी भत्ता भी नहीं है।"

प्रद्युम्न ने सीने पर हाथ रखते हुए कहा—"प्रेम वह शक्ति है कि महीने के दिन यों ही निकलते चले जायेंगे। जो प्रेम में इतनी भी शक्ति नहीं हुई तो फिर क्या हुआ ?

"हाय कवियों ने प्रेमिकों को केवल इतना ही कहकर सावधान किया कि कुसुम में कीट होते हैं, कमल के नीचे काँटे रहते हैं, पर कुसुम पत्थर का बना हो सकता है यह बात किसी काव्य में लिखी नहीं है।"

सुरधुनि मुस्कराकर बोली—"अच्छी बात याद आयी। समय जल्दी-जल्दी निकालने के लिए अपने को एक अलग मोटर की भी ज़रूरत है।"

प्रद्युम्न सारी बात समझ गया। दादाजी के सहृदय मन का स्पर्श सुरधुनि को भी लग चुका था। पर माताजी टस से मस नहीं होतीं।

१२

प्रद्युम्न चाहे जिस परिवार या खानदान का हो, था वह नौजवान ही। आधुनिक आबोहवा और बाह्य जगत की स्वतन्त्रता की लहरें उसके मन को भी छू छू जाती थी। चारों तरफ़ के लोग परस्पर खुलकर स्वतन्त्र रूप से मिलते थे। पर प्रद्युम्न के घर की आबोहवा अजीब थी। वहाँ जो कुछ भी होता था सब गुप्त रूप से छिप-छिप कर। पति-पत्नी का नवीन प्रेम फाल्गुन की धारा की तरह गुप्त रहे—बाहर प्रकाशित न हो।

मोक्षदासुन्दरी के राज्य में शृङ्गार रस को एक कमरे में निर्वासित कर दिया था, या यों कहिये कि घूँघट लगाकर ही वह फिर-कैयाँ ले सकता था। कवीन्द्र रवीन्द्र के उपन्यास 'शेष कविता' के नायक अमित और नायिका केतकी की तरह नैनीताल में केवल दोनों का मधुचन्द्र सम्भव न होगा। यदि पूजा की छुट्टी में कहीं बाहर जाना हो तो उसमें भी कोई रस नहीं मिलेगा। हाँ, पुरी या देवघर चला जाय तो तीर्थ-यात्रा के बहाने आम के आम और गुठलियों के दाम मिलना सम्भव हो जायगा। पर उन स्थानों में भी युगल-विहार की कोई सम्भावना नहीं है।

प्रायः समझा जाता है कि बहू घर का सामान है और मालकिन की निजी सम्पत्ति है। लड़के के साथ उसकी शादी ज़रूर हुई है, पर वह पहले सास की बहू है और फिर पति की पत्नी। इसलिए कलकत्ते के बाहर जाना भी बेकार था। संध्या के समय भी बहू को सास से छुट्टी मिलती हो, सो बात नहीं। दिन तो दुपहर में आँख लगने के साथ-साथ समाप्त हो जाता है। संध्या-समय लालटेनों का जुलूस निकलता है। यह क्या बला है? ज़रा सुन लीजिये। प्रेम किस मार्ग से प्रवेश करे? मोक्षदासुन्दरी आगे-आगे रहती है, बगल में नयी बहू और फूफी की लड़की आदि रहती हैं, ऐन पीछे पान खैनी आदि

डिब्बों को लिये हुए दाँतों में मिस्सी लगाये नौकरानियों की पलटन रहती है और उनके पीछे लाठी और लालटैन लिये हुए दरबान। भला इस भयंकर व्यूह में प्रेम किस मार्ग से प्रवेश करे ?

प्रेम किस मार्ग से प्रवेश करे.

मोटी-सी बात यह है कि इस घर में यौवन की अठखेलियों के लिए कोई स्थान नहीं था। कवियों ने तो और भी शामत ढाई है। कवीन्द्र रवीन्द्र का यह गीत प्रद्युम्न जानता था।

"सबुज सायरे सागर किनारे
देखछि पथे जैते तुलना-हीनारे"

याने नील समुद्र में और समुद्र के किनारे मैंने उस अतुलनीया को राह चलते देखा है। इस कविता के साथ-साथ प्रद्युम्न के मन में डैफोडिल फूल से छाये हुए इंग्लैण्ड के स्निग्ध हरे मैदानों के रंग की साड़ी बसी हुई थी। उसका महीन किनारा सुरधुनि के गोरे बदन को घेरकर उसे वन-लक्ष्मी का रूप देगा। वह उस समय उसे शकुन्तला कहकर पुकारेगा। उसकी केशराशि नितम्ब तक पहुँचेगी और इस प्रकार देह-भंगिमा के लिए एक पृष्ठभूमि तैयार होगी। बाहुलता में कोई भी गहना नहीं रहेगा। हाँ, एक हाथ की पोंची में सोने की पतली-सी चूड़ी रहेगी, जिससे व्यग्रबाहु के इंगित को रूपान्वित होने में सहायता मिले। दूसरे हाथ की कलाई में मणि-माणिक्य-मंडित एक घड़ी रहेगी। न रहे तो भी कोई हर्ज नहीं, क्योंकि समय गतिहीन होकर संध्या के आँचल में अटक जाय तो अच्छी बात है। चेहरे पर कोई अलंकार नहीं रहेगा। हाँ, दोनों कानों में चुन्नी के दो कर्णफूल रहेंगे, मानों कानों में जो कुछ कहा गया है, उसके वे नीरव गवाह हों। पैरों में भी जो रहेगा वह केवल चरण-कमल ही रहेगा। उसमें किसी नूपुर की आवश्यकता नहीं होगी। किसी दूसरे को जताना थोड़े ही है और अपने हृदय में तो हर समय वही नूपुर बज रहे हैं। ठीक ही उसका नाम है सुरधुनि। वह हृदय में तरंगित हो बहती रहती है।

प्रथम मिलन के सम्बन्ध में यह था उसका स्वप्न। पर जिस रूप में वह वस्तुतः सामने आया उसे वह कभी भुला नहीं सकता। सुन्दर सजे हुए घर के चारों तरफ़ लोग छिप-छिप कर वर और वधू को देख रहे थे। सभी उत्सुक थे कि नवजीवन नृत्य की प्रथम नूपुर ध्वनि को सुनें। दूसरे दम्पत्ति सोचते कि शायद इस प्रकार चोरी से जीवन की नवलीला देखने पर उनके अपने जीवनों में तरंग-गति कुछ द्रुत हो जाय। यह सब नव दम्पत्ति के लिए अत्यन्त असुविधाजनक था।

इन सब बातों को सोचते हुए भी लज्जा के मारे बुरा हाल

होता है। पर मानना ही पड़ेगा कि इस संसार में सभी कवि हैं। जो नहीं हैं वे भी एक रात के लिए स्पर्श-मणि के स्पर्श से कवि हो जाते हैं। और प्रद्युम्न के सामने तो संसार का समस्त प्रेम-साहित्य-भंडार खुला हुआ था। वह बार-बार उन्मना होकर सृष्टि के प्रथम युग में लौट गया था। जिस परम विस्मय से प्रथम नर ने प्रथम नारी को देखा था वही विस्मय उसकी आँखों में था। मानो विश्व-नारी काल के स्रोत में तिरते-तिरते उसी के लिए विशेष रूप से नववधू का रूप धरकर आयी हो। उसके मन में यह भी आया कि अनन्तकाल से महादेव के लिए जो उमा तपस्या कर रही है यह उमा वही है, और वह स्वयं है महादेव।

उस समय संध्या की धारा आकर रात्रि की महाधारा में घुल-मिल रही थी। बचपन में उसे जल्दी सोने का अभ्यास था। पर आज इस जागरण में कितना आनन्द था! जीवन की नदी में आज जल-धारा नीचे की ओर न जाकर ऊपर की ओर जा रही थी। क्या अब से सब रातें इतनी ही मधुमय हुआ करेंगी? क्या अब से उसकी रातें उसके दिनों को घेरकर स्वप्न-रचना करती रहेंगी?

दिन भर उसने अपनी दुलहिन को कल्पना में फूल की मालाओं से सजाया था। अन्धकार की विपुल आशा में जो नक्षत्र रतजगा कर रहे थे उनकी तरफ़ ताककर वह मानो जन्म-जन्मान्तर से उसी की बात सोचता आया था। पर आज तो कल्पना की वह देवी रूप धरकर साक्षात् सामने प्रगट होने वाली थी। आज तो वह सहस्र सूर्यों की दीप्ति लेकर आविर्भूत हो रही थी। पर प्रतीक्षा करते-करते रात ढलने लगी। ऐसे समय उसने मन ही मन कविता की शरण ली। नीहार की लिखी हुई वह कविता उसके मरनस नेत्रों के सामने कौंध गयी, जिसका मतलब कुछ ऐसा था कि दिवस के अवसान के समय मैं तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूँ, उधर पश्चिम गगन में सूर्य सुनहरी आभा फैला-कर पूर्व दिशा तक लम्बी छाया से पुल-सा बनाकर किसी के जाने और किसी के आने की बात कह रहा है। संध्या के समय चारों तरफ़ शांति बिराजती है, पर मन में वह शांति व्याप्त नहीं होती,

बल्कि एक तड़पन, यहाँ तक कि घुटन पैदा होती है। रात्रि धीरे-धीरे चूकर समाप्त हो जाती है, और इस प्रकार संध्या से लेकर उषा काल तक प्रतीक्षा ही रहती है।

पर कविता ने भी अधिक सहायता नहीं की। बल्कि अपनी दुर्दशा की उससे और अधिक अनुभूति हुई। अन्त को जब वह आयी तो इस प्रकार से आयी कि वह वन-लक्ष्मी तो क्या, वन ज़रूर मालूम होती थी। पुराने ढंग के गहनों इत्यादि के मारे बल खाते हुए बाल दिखायी नहीं पड़ रहे थे। और चेहरा! वह भी मुश्किल से दिखायी पड़ता था। बनारसी साड़ी और तरह-तरह के अलंकार, यही सब सामने आ रहे थे। इनके कारण नर और नारी पीछे रह गये थे। उसे आशा थी कि उधर से भी मिलन की व्याकुलता होगी, पर सामने जो कुछ दिखायी पड़ा वह था हीरे-मोतियों से जड़ा हुआ, सुनहली साड़ी में लिपटा हुआ कमल का फूल। प्रेम की गुंजाइश इसमें कहाँ थी? ऐसा मालूम होता था कि यह कीमती साड़ी और गहनों का एक जंगल है। कालिदास ने जो वर्णन लिखा है—"आवर्जिता किंचिदिव स्तनाभ्यां वासो वसाना तरुणार्करागम्"। यह उसी का रूप था जो पेड़ पर लागू होता था। यह संचारिणी पल्लविनी लता का रूप नहीं था। यह स्त्री हो सकती है, पर प्रिया नहीं। यह मानसी तो नहीं है ही, पर मानवी भी पूरी नहीं है।

१३

क्या प्रेम कभी मापा जा सकता है ?

हाँ, प्रेम कितना विशुद्ध, गहरा या उच्छ्वासमय है, इसकी धारणा बनाना सम्भव है। पर कवि इससे इन्कार करते हैं। किसी-किसी कवि ने इसके लिए यह पेशबन्दी कर रक्खी है कि अपने ही मन तक को जाना या पहिचाना नहीं जा सकता। यदि यह बात मान ली जाय तो सारी समस्या का ही बंटाढार हो जाता है। अब तो वह ज़माना है कि हर चीज के लिए लाइसेन्स और परमिट की ज़रूरत होती है, पर अपने मन पर किसी ने कभी नियन्त्रण नहीं किया। प्रेम करने अथवा उसमें फँसने के लिए किसी परमिट की आवश्यकता नहीं है। वहाँ सब बेहिसाब है, वहाँ परमिट देनेवाला ही क्या करेगा? झख मारेगा।

पर प्रेम गज से नापा जा सकता है। यह कैसे ? यह पहले पता नहीं था, पर अभी हाल में सन्थाल परगने में देखा कि सभी लोग इस विषय में आलोचना कर रहे हैं। सबसे मेरा मतलब उन लोगों से है, जो प्रेम में नहीं पड़े, यानी जो अविवाहित तरुण हैं। प्रेम के संसार में वे ही सफल रहते हैं, क्योंकि उन्हीं के कल-कूजन से प्रेम अभी तक इस संसार में टिका हुआ है। जो लोग प्रेमसागर में डूबकर लुप्त हो गये हैं, उनसे भला क्या आशा ?

विवाह के बाद प्रद्युम्न और सुरधुनि सन्थान परगना गये थे। पर इसे हनीमून कहना उचित न होगा, क्योंकि प्रद्युम्न जिस घराने का लड़का था, किसी लड़की की शादी उस घराने के लड़के के साथ नहीं होती थी, सारे परिवार के साथ होती थी। इसी कारण सुरधुनि जब परिवार के सब लोगों का ऋण चुका लेती थी यानी सास की बहू, ननद की भौजाई, देवर की भाभी आदि हो चुकती थी, तभी वह रात्रि के लम्बे घूँघट की आड़ में, और सो भी नींद की गोद से

पतित होकर, पति की पत्नी बनती थी ।

इतनी दूर आने पर भी बहू को सास से मुक्ति नहीं मिली । बात यह है कि सास यह चाहती थी, और केवल चाहकर ही वह चुप होनेवाली नही थी, वह देखती भी थी, कि बहू सब धर्म-कर्मों में शामिल हो, दूसरे शब्दों में वह अपने साथ-साथ उसे मन्दिरों में लिये-लिये फिरती थी । वैद्यनाथ एक छोटा-मोटा तीर्थ-स्थान है, इसलिए धर्म-कर्मों के लिए विशेष मौका था । पता नही जिन लोगों ने तीर्थ-यात्रा की पद्धति चलायी उनके मन में यह बात कहाँ तक थी कि उनके अनुयायी तीर्थ-यात्रा के बहाने देश-विदेश घूमें और नये-नये

लड़की की शादी सारे परिवार के साथ होती है.

दृश्यों का आनन्द उठाएँ । भले ही गौण रूप से यह उद्देश्य कुछ सिद्ध हुआ हो, मोक्षदासुन्दरी के क्षेत्र में यह उद्देश्य करीब-करीब व्यर्थ हो

गया था।

फिर भी जिसको ईश्वर देता है, उसको छप्पर फाड़कर देता है। एक दिन सन्ध्या-समय मोक्षदासुन्दरी एक मन्दिर से निकल रही थी तो एक पुरानी सहेली से उनको भेंट हो गई। उस सहेली के साथ मोक्षदासुन्दरी का गंगाजल का सम्बन्ध था यानी दोनों एक दूसरे को गंगाजल कहकर पुकारती थीं।

गंगाजल के साथ जो बातचीत होती थी, वह सारी की सारी ऐसी नहीं थी जो नयी बहू के सामने की जा सके। इसलिए थोड़ी देर बाद उन्होंने अपनी बहू से कहा कि वह लड़के के साथ घर लौट जाय। सुरधुनि बिल्कुल अवाक् रह गई। ऐसी अशास्त्रीय घटना या कह लीजिए दुर्घटना कभी इस खानदान में हो सकती है, इसकी कल्पना पहले नहीं की जा सकती थी। वह लज्जित होकर एक बार सास की तरफ़ देखने लगी, फिर पति की तरफ़ ऐसे देखती रही मानो उससे कहा गया हो कि वह किसी पर-पुरुष के साथ चली जाय। एक अजीब परिस्थिति थी।

प्रद्युम्न ने ऐसा दिखलाया मानो उसमें इन बातों का कोई सरोकार ही न हो। इस प्रकार के सौभाग्य पर विश्वास करना कठिन था पर प्रतापशालिनी माँ की ओर देखने की वह हिम्मत नहीं कर रहा था, क्योंकि जो हुक्म दिया जा चुका था, उसे वापस लेते कितनी देर लगती है।

प्रद्युम्न तो माँ की सहेली की ओर भी नहीं ताक रहा था, क्योंकि उधर से यह भी तो कहा जा सकता था—'अपनी चाँद-सी बहू को आज मैं अपने यहाँ ले चलूँगी। चलो, आज मेरे यहाँ चलो।'

कुछ भी हो, विपत्ति की घड़ी टल गई। दोनों अधेड़ स्त्रियाँ अतीत की मित्रता से विचलित होकर आपस में कुछ बक-बक करती हुई बाज़ार के रास्ते से चली गयीं। शायद जाते-जाते कुछ बर्तन भी खरीदने थे।

इस बीच में नवदम्पति चाहे लज्जा से कहिये या मौक़ा कहीं निकल न जाय, इसलिए जल्दी भीड़ में खो गये। साथ के दरबान

मिसिरजी भी मौक़ा देखकर खिसक गये। इस संसार में प्रेम के मार्ग में जैसे काँटे हैं, वैसे ही अप्रत्याशित स्थानों से सहानुभूति भी मिलती है।

स्टेशन के पास ही घूमकर वे मैदान में उतर पड़े। उद्देश्य समझना कुछ कठिन नहीं है। मार्ग से कुमार्ग ही प्रेम के लिए सुविधाजनक रहता है। जनता के बजाय निर्जनता ही इस मार्ग में काम आती है।

पर यहाँ आकर भी कोई मौक़ा अच्छा नहीं मालूम हुआ। बहुत से नवयुवक यहाँ मारे-मारे फिर रहे थे। उन्हें देखकर यह समझ में आता था कि वे संसार के जितने भी विषय हैं, उन सब पर आलोचना करते हैं। प्रद्युम्न ने ज़रा दबी आवाज़ में सुरधुनि से कहा, "आओ ज़रा साथ-साथ टहलें और बातचीत करें।"

सुरधुनि बहुत नाराज़ थी। अब तक वह पति के पीछे-पीछे किसी तरह घिसटती चली आ रही थी। बाहर निकलकर भी यदि नवविवाहित मन ही मन फूफी और मौसी के डर का अनुभव करें, तो उन लोगों को बालिग ही नहीं होना चाहिए।

सुरधुनि बोली—"क्यों? पास आओगे तो लोग कुछ कहेंगे तो नहीं?"

सुरधुनि के लहजे में व्यंग्य का पुट था।

ज्वालामुखी का लावा भूमि के अन्दर सुलगता रहता है, पर किसी दिन वह भूचाल से परिचालित होकर विपुल वेग से बाहर की ओर दौड़ पड़ता है। घर के लोगों के कारण दबा हुआ मन का अग्नि-प्रवाह एकाएक फूट पड़ा। प्रद्युम्न बोला—"तुम क्या हमेशा दूसरों की बात ही सोचती रहोगी?

"वह तो तुम कर रहे हो। यह अच्छी रही! उलटा चोर कोतवाल को डाँटे!"

"चलो ऐसे ही सही, पर पास क्यों नहीं आतीं?"

"पास क्यों आऊँ?"

प्रद्युम्न बोला—"नहीं तो दूसरे न मालूम क्या सोचेंगे?"

"याने?"

प्रद्युम्न बोला—"पति-पत्नी आपस में कितना फासला रखकर चल रहे हैं, यह देखकर यह बताना असम्भव नहीं कि उनकी शादी हुए कितने दिन हुए।"

सुरधुनि बोली—"अच्छा यह बात है! मैंने तो यही सुना था कि विधाता वर और वधू को एक साथ सी देते हैं, पर नहीं जानती थी कि वे दर्जी की तरह फीता और कैंची लेकर हर समय उस बन्धन को ढीला भी करते रहते हैं।"

अब सुरधुनि खुलकर बातें करने लगी थी। देखकर प्रद्युम्न बहुत खुश हुआ। बोला—"सचमुच फासला देखकर यह बताना सम्भव है कि विवाह कब हुआ। तुम में मुझमें जितना फासला है, उसे देखकर छोकरे कह रहे होंगे कि हमारी शादी हुए सात साल हो गये।"

"फिर भी ग़नीमत है कि सात ही साल हुए।"

प्रद्युम्न बोला—"देखो, साल बढ़ते जा रहे हैं, जल्दी से पास आ जाओ।"

"पास आने से उम्र घट थोड़े ही जायेगी?"

अब की बार प्रद्युम्न ने आस-पास घूमने वालों की आँखें बचा कर सुरधुनि का हाथ पकड़कर खींच ही लिया। सुरधुनि मानो इसके लिए तैयार ही थी। दोनों हाथ पकड़कर चलने लगे। सुरधुनि बोली—"अब कितने साल की शादी है?"

आनन्द से उच्छ्वसित होकर प्रद्युम्न बोला—"परसों ही, जैसे वह शुभ रात्रि थी।"

सुरधुनि बोली—"और अब क्या झगड़ा है?"

"नहीं, झगड़ा नहीं, उसका उलटा, जब पहले-पहल प्रेम का सूत्र-पात होता है, तब प्रेमी-प्रेमिका इस प्रकार रास्ता चलते हैं, मानो वे वृक्ष और वल्लरी हों। गले में पड़ी हुई माला का व्यवधान भी सहन नहीं होता।"

कहते-कहते प्रद्युम्न ने आवेग के मारे करीब-करीब आँखें बन्द करलीं। सुरधुनि ने तैश में आकर कहा—"इसके माने यह हुए कि हज़रत ब्याह के पहले ही इन सारी बातों को समाप्त कर चुके हैं।"

प्रद्युम्न डरा कि यह अच्छी मुसीबत आयी, पर ऐसे समय में हार मानने से काम नहीं चलता था। आज पहला ही मौक़ा लगा है नव-वधू के साथ सान्ध्य-विहार करने का। घर में लौटे कि फिर वही चक्र चलेगा। सुरधुनि घर पहुँची कि फिर वह सास की बहू हो जायेगी। इस समय क्रोध या मनमुटाव आदि में एक मिनट भी नष्ट करना उचित न होगा, इसलिए उसने बातों का रुख़ फेरते हुए कहा—"मैं जो कुछ कह रहा हूँ, वह तो शास्त्रों की बात है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में इस प्रकार की बातों का मौक़ा नहीं आता। फिर शास्त्र और जीवन में बड़ा फ़र्क है। एक केवल सिद्धान्त है, दूसरा तजुर्बा।"

सुरधुनि ने मुँह बनाते हुए कहा—"यह बात सब पर लागू नहीं होती।"

बुद्धिमान प्रद्युम्न ने कहा—"अब तक तो पुस्तकी विद्या थी, अब चाहता हूँ कि उन्हीं बातों को जीवन में प्रत्यक्ष करके देखूँ। अब जाने दो इन बातों को, पास आओ। मान लो कि हम लोगों का 'इंगेजमेंट' भर हुआ है, उसी के अनुसार व्यवहार करो।"

सुरधुनि हँस पड़ी, बोली—"क्या उस दिन दोनों के बीच जो फासला रहता है, उसे नापा नहीं जा सकता?"

प्रद्युम्न खुश होकर बोला—"नहीं, उस दिन प्रेयसी के हाथ में अँगूठी पहिनायी जाती है, इसलिए दोनों में फासला अधिक से अधिक उतना ही हो सकता है, जितनी अँगूठी की मोटाई-चौड़ाई है।"

सुरधुनि बोली—"इसके माने यह हुए कि अँगूठी पतली से पतली होनी चाहिए।"

"तुमने ठीक ही कहा है, इसीलिए विलायत में अँगूठियाँ इतनी पतली होती हैं। दुष्ट लोग इसकी यह व्याख्या करते हैं कि अँगूठी जितनी पतली होगी, उसे उतनी ही जल्दी तुड़ाकर भागना सम्भव होगा।"

कृत्रिम भय से कपोलों पर हाथ रखती हुई आँखें फाड़ती हुई सुरधुनि बोली—"कितनी भयानक बात है! तो तुम यह सारी बातें इसीलिए कर रहे हो कि रस्सी तुड़ाकर भाग सको। इसीलिए मुझे पास बुला

रहे हो। नहीं जी, मैं ऐसी बातों में नहीं पड़ती, मैं दूर हट जाती हूँ, यही हमारे लिए भला है।"

घबराकर प्रद्युम्न बोला—"नहीं, नहीं, ऐसा नहीं। तुम इतनी दूर जा रही हो। शास्त्रों का मत है कि स्त्री तभी ऐसा करती है जब उसे विवाह के पहले के प्रेमियों की याद आ जाती है।"

जल्दी से सुरधुनि वापस आ गयी। बोली—"तुम्हारे मुँह में कोई भी लगाम नहीं है। छि: छि: !!"

"तुम भी तो दुख देना नहीं छोड़तीं।"

सुरधुनि कुछ विनय के स्वर में बोली—"मुझ से ही तुम पास आने के लिए क्यों कहते हो? तुम स्वयं मेरे पास क्यों नहीं आते?"

"स्त्रियाँ ही अभिसारिका होती हैं। सास, ननद सबसे छुपकर, गालियों और तानों की उपेक्षा करके, रात-दुपहर में राधा ही कृष्ण के लिए निकल पड़ती थी, न कि कृष्ण राधा के लिए।"

"यह कृष्ण का जुल्म था। न तो कृष्ण को कभी कोई बदनामी उठानी पड़ी और न कभी और कोई आफ़त ही आगी। उन्हें कभी परीक्षा भी नहीं देनी पड़ी। फिर भी बाँसुरी बजा-बजा कर घर से निकालने वाले वे ही थे। उन्होंने दूसरों की नीति या सामाजिकता को बदलने की कोई चेष्टा नहीं की। हाँ, मजे उन्होंने ही उड़ाये।"

"इसी कारण राधा को लोग प्रेमिका के रूप में आदर्श मानते हैं, पर कृष्ण को कोई आदर्श नहीं मानता। देखो सब भक्त राधा होना चाहते हैं, पर कृष्ण होने की बात कोई नहीं कहता।"

सुरधुनि बोली—"मैं तो कहती हूँ कि ये सारी बात ग़लत है। मेरा वश चलता तो मैं कृष्ण से कहती—कृष्ण, तुम अपनी परीक्षा दो। बाधायें, अपवाद, अवरोध सब तुम्हारे सामने आयें, फिर देखती हूँ तुम्हारी बाँसुरी कैसे बजती है।"

"याने तुम सब उलट देना चाहती हो?"

"हाँ, कृष्ण को मालूम तो हो कि आटे-दाल का भाव क्या है? बाँसुरी बजा दी और प्रेमिका को बुला लिया। किसी प्रकार की न कोई बाधा और न बदनामी!"

आलोचना बड़ी गम्भीर होती जा रही थी। नवदम्पति के लिए बिल्कुल सुविधाजनक नहीं थी। घर भी कोई दूर नहीं था। पुरानी बस्ती के शुरू के मकान दिखायी देने लगे थे। प्रसंग को जल्दी समाप्त करने के लिए प्रद्युम्न बोला—"राधाकृष्ण की युगल मिलन वाली मूर्ति ही चिरन्तन प्रेम की अवस्था है। मानो आज ही मिलन हुआ है, और कभी अन्त न होगा।"

"फिर अर्द्धनारीश्वर मूर्ति क्या है?"

प्रद्युम्न बोला—"इसमें विधाता पुरुष हार गये। नापते-नापते देखा कि किसी भी गज से नापने का काम नहीं चल सकता तब गज ही फेंक दिया, क्योंकि वे यह समझ नहीं पाये कि यह चिर-विच्छेद है या चिर-मिलन, जिसमें विछोह होता ही नहीं।"

अकस्मात उन्हें मालूम हुआ कि पीछे से किसी ने हँसी रोकी। घूमकर जो देखा, उससे सुरधुनि का सिर यों ही झुक गया और साड़ी का आँचल कन्धे से सिर पर पहुँच गया। प्रद्युम्न की हालत भी उसी प्रकार की हुई। पर-पुरुषों के क्षेत्र में आँचल खींचने की किसी क्रिया का मौक़ा नहीं रहता। वे जल्दी-जल्दी चलने लगे। अब तक उन्होंने किसी को पास न समझकर जो आलोचना की थी, संभव है इन दुष्ट नवयुवकों ने उन सारी बातों को सुना हो और इसीलिए शायद वे उस मैदान से पीछा करते हुए यहाँ आये हों।

खैरियत यह है कि दुनिया भर के ऐसे पाजी और अवारा लोगों को भी कुछ न कुछ लज्जा रहती है। जब उन अवारों ने देखा कि पकड़े गये हैं, तो वे भी दूसरी तरफ़ चले गये। एक अवारे युवक का शरीर चादर से लिपटा हुआ था, मानो हृदय में कितनी ही वेदना थी। फिर भी लौटते समय अवारों में से एक दुलत्ती झाड़ता ही गया। मुँह से अजीब आवाज़ निकालते हुए बोला—"फीते से इनके प्रेम को नापना कठिन है। इनको सभी बातें मालूम हैं। कौन कहेगा कि ये नवदम्पति हैं, ये लोग चिरन्तन प्रेमी-प्रेमिका हैं।"

कवि प्रेम के रस को आदिरस कहते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि उनका यह कथन बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। पर नव-रसों से भी नवीन और आदिरस से भी प्राचीन एक अनन्त रस हम सब के जीवनों में, अस्थि और मांस में, समाविष्ट है, इस बात को कवि भी नहीं जानते।

उनके लिए यह जानना सम्भव भी नहीं है। जो लोग साधारण वाक्य को रसगुल्ले की तरह रस में डुबाकर मोअन देकर काव्य बना डालते हैं, वे हलवाइयों की तरह मिठाई के व्यापारी हैं। वे मीठे को और मीठा बनाते हैं। वे ऐसा व्यापार भी आवश्यकता के कारण ही करते हैं। पर इस संसार में ऐसी बहुत सी चीज़ें हैं जो मीठी नहीं बन सकतीं, जैसे लाल मिर्च। इसी कारण काव्य-जगत एक अधूरा जगत है। मद्रास के लोग तीखा, खट्टा और नमक मिलाकर जिस 'रसम्' को तैयार करते हैं वह केवल मद्रास की चीज़ नहीं, हमारे घरों और हमारे जीवन में यह स्वाद सदा सर्वत्र मिलता रहता है। कुछ ढीठ लोगों का कहना है कि दाहिनी तरफ़ जो लोग रहते हैं यानी पुरुषों को अक्सर अपनी वामाओं की रसना में यह रस चखने को मिलता है।

गोरे और हम लोग एक ही आर्यवंश से उत्पन्न हुए हैं, इसका प्रमाण भाषा से मिल चुका है। एक प्रमाण लीजिए। हम जिसे कंटक रस कह सकते हैं, वही अंग्रेजी में कैण्टकैरस (Cantankerous) हो गया है।

दम्पति में हम लोगों का मित्र कौन है? उनमें से जो दमदार है वह नहीं, बल्कि उसके दम के मारे जो दिन-रात वर्स हाफ़ यानी 'मन्द-न्तर अर्द्ध' बनकर पतित होता रहता है, वही हम लोगों का मित्र है, अर्थात् पति। प्रद्युम्न और सुरधुनि अभी रस समुद्र के आरम्भ में ही थे। अन्त तक पहुँचने में बहुत देर थी। इससे दुनिया का कुछ आता-

जाता नहीं, क्योंकि जिसे हम कण्टक रस बता चुके हैं, वह चारों तरफ व्याप्त है। बंकिमचन्द्र की रसिक नौकरानी ने गाया था—"विधाता ने कण्टक से रचे मृणाल।" एक दूसरे कवि भी इसी प्रकार कह गये हैं कि कण्टक देखकर कमल से मुँह क्यों मोड़ते हो? यद्यपि असल में कमल में कण्टक नहीं होते, फिर भी कवियों की इन उक्तियों के निहितार्थ को हम सभी समझते हैं, और हम कण्टक के कारण कमल से कभी घबरायें नहीं। यदि कमल में कण्टक रह सकते हैं तो उन कण्टकों में रस भी तो हो सकता है?

जिस दिन प्रद्युम्न सुरधुनि को लेकर अकेला घूमने गया था उस दिन अवारा लड़कों ने उसका पीछा किया था, यह खबर किसी तरह मोक्षदासुन्दरी के कानों में पहुँच गयी। मुहल्ले की कौशल्या फूफी भी धनी पड़ोसिन की बदौलत देवघर भ्रमण करने आयी थीं, उसे भी यह खबर मिली। बस फिर क्या था, एक की दो और दो की चार बन गयीं। स्त्रियों को तो कुछ कच्चा माल, जैसे कच्ची तरकारी मिलनी चाहिए, फिर उसे बढ़िया से बढ़िया तरकारी का रूप देकर परोसने में देर नहीं लगती। जिस रूप में वह परोसी जाती है, उसमें और कच्चे माल के रूप में कोई भी सम्बन्ध ज्ञात नहीं होता। इस खबर की भी वही दशा हुई। कौशल्या फूफी ने चेहरा बनाकर कहा—"बहन, तुम तो भोली हो, पर तुमसे क्या छिपाऊँ? अवारों ने बहू का पीछा किया था, यह कहो कि हमारी बहू बड़ी सयानी है, इसलिए लड़के का हाथ छोड़ घूँघट काढ़ सीधी घर चली आयी। कोई ईसाइन होती तो देखतीं कि क्या गुल खिलता?"

यों ऊपर से तो यह बहू की प्रशंसा ही लगती थी, पर कौशल्या की सधी हुई जीभ प्रशंसा के मिस से ज़हर फैला गयी और ऐसे फैला गयी कि कहने वाली को दोष न दिया जा सके और साथ ही काँटा भी चुभता रहे। इसी का नाम कण्टक रस है, जो हमारी राष्ट्रीय सम्पत्ति है।

बातें थोड़ी थीं, पर मोक्षदा को तिलमिला देने के लिए यथेष्ट थीं। बाग बाजार के प्राचीन घराने की नयी बहू दिन-दहाड़े बिना

घूँघट काढ़े पति के साथ चले और सो भी पति का हाथ पकड़कर, इससे बढ़कर लज्जा की बात और क्या हो सकती है ? मुहल्ले के नाते फूफी, शायद इसी बात से लज्जित होकर चली गयी। यह उसी प्रकार की घटना थी जैसे साँप डसकर बांबी में घुस जाये।

दुनिया सरपट आगे बढ़ रही थी, पर यह फूफियाँ जहाँ की तहाँ पड़ी हुई थीं। कहते है कानून के हाथ बहुत लम्बे होते है, पर इन फूफियों की जीभों की लम्बाई शायद उससे भी अधिक होती है। ये लोग कभी ईसाइयों के सम्पर्क में नहीं आयीं, पर सर्वज्ञा होने के नाते यह चाहे जिसको ईसाई करार दे सकती हैं। विरोधी वातावरण तैयार करने के लिए ज्ञान की आवश्यकता थोड़े ही है। जो ज्ञान ही होता तो फिर कण्टक रस कहाँ से उत्पन्न होता ?

शादी के उपलक्ष में प्रद्युम्न केवल एक सप्ताह कालिज से अनुपस्थित रहा। कोई ऐसी बड़ी बात नहीं, पर हरिहर ने तपाक से उसका स्वागत यों किया—"अच्छा, अब आप पधारे हैं। मालूम होता है स्त्री अब पुरानी हो गयी है !"

अपनी आँखों को आकर्ण विस्तृत करते हुए अमिय निमाई ने कहा—"ये बात थोड़े ही है, असली बात तो यों है कि कल रात को उनसे कोई झगड़ा हो गया होगा।"

अपने को मनोविज्ञान का पडित मानने वाले (मान न मान मैं तेरा मेहमान के ढंग पर) जगवन्धु ने पान चबाते हुए बड़े इत्मीनान के साथ कहा—"तुम लोग क्या जानो इन गहरी बातों को। यह तो मनोविज्ञान की बात है। प्रद्युम्न आज कालिज में इसलिए आया है कि एकरसता दूर हो, और रसबोध ज्यों का त्यों क़ायम रहे। जैसे कूदने के लिए पीछे हटकर छलाँग मारी जाती है, यह वैसी ही बात है, इस क्षेत्र में पीछे हटना भ्रममात्र है।"

अमिय निमाई सुनकर दंग रह गया। बोला—"प्यारे सच कहो, क्या अभी से जीवन तीखा लगने लगा, या कोई काव्यमय पेंच है।"

"कौनसा काव्यमय पेंच ?"—सब लोगों ने उत्सुकता के साथ प्रश्न किया।

पर जगबन्धु आसानी से उत्तर देने वाला नहीं था, मुस्कराकर बोला—"दो मिनट ठहरो।"

अभी श्रेणी में अध्यापक जी के आने में कुछ देर थी। जगबन्धु प्रद्युम्न के पास जाकर बैठ गया और गपशप में मशगूल हो गया। फिर एकाएक 'गोल्डन ट्रेजरी' के कविता के स्वर्ण-भंडार से उसने एक कविता निकाली जो पेन्सिल से लिखी हुई थी। उसका भावार्थ यों था—

तुम्हें नित नये रूप में पाता रहूँ,
इसलिए तुम्हें खोता रहता हूँ,
प्रतिपल, प्रतिक्षण,
हे मेरे प्रेम के अनन्त धन !

हे मेरे प्रेम के अनन्त धन.

एकाएक जगबन्धु ने सबके सामने यह कविता कही और फिर सबसे बोला—"अब समझे ?"

जिस बेचारे को घेरकर यह सारा षड्यंत्र चल रहा था, वह पहले इसे नहीं समझ सका। दूसरी दफा सोचने के बाद उसे समझ आयी कि यह उस पर और उसकी नववधू पर कटाक्ष है। वह लज्जित हो गया और उसने सिर नीचा कर लिया। श्रेणी में कुछ छात्रायें भी थीं। वे भी इस धनी सहपाठी के अल्पायु विवाह को परिहास और अनुकम्पा की दृष्टि से देखती थीं। श्रेणी में छात्र और छात्राओं का परस्पर सम्बन्ध अभी भी सहज नहीं हुआ था। फिर भी जगबन्धु ने ऐसा दिखाया कि उसने छात्राओं को लक्ष्य करके ही इस कविता की आवृत्ति की। जब श्रेणी समाप्त हुई तो कुछ छात्र जगबन्धु पर बहुत नाराज़ हुए। बोले—"हम हँसी-मज़ाक करते हैं, यह और बात है, पर सारी श्रेणी के सामने इस तरह का मज़ाक बनाकर तुमने

बुरा किया ।

उसने अपनी सफ़ाई में कहा—"उस दिन मेरा परिचय ढंग से नहीं कराया था, याद है न ?"

नीहार ने घृणा और अनुकम्पा के साथ कहा—"राम राम, तुम इतने कमीने हो । डेढ़ सौ मित्रों की भीड़ में सबका परिचय ढंग से नहीं कराया जा सकता था । प्रद्युम्न ने तुम्हें पीटा नहीं यही काफ़ी है। तुम हटो यहाँ से ।"

कुछ कुनमुनाता हुआ जगबन्धु वहाँ से चला गया । यदि लोग उस पर ध्यान देते तो सुनाई पड़ता—वह कह रहा था—'तुम लोग सब शहर के छोकरे हो और गिरोहबन्द हो, इसलिए जाने को तो चला जाता हूँ, पर ऐसा डंक मारे जा रहा हूँ कि कुछ दिन याद करोगे । मेरा क्या, न आगे नाथ न पीछे पगहा ।'

आने-जाने के बारे में हम कुछ सोचते नहीं हैं, पर जहाँ जाते हैं वहीं काँटे बिछाते जाते हैं । जब जगबन्धु चला गया तो नीहार ने इसी बात को समझाकर कहा—"हम बंगाली परम वैष्णव होते हैं ।"

अब हरिहर को यह बुरा लगा । वह न शिव का भक्त था और न कृष्ण का । उसके यहाँ काली की पूजा होती थी । बोला—"तुम्हारा यह कथन सत्य नहीं है । बंगालियों में जो सबसे अच्छे होते हैं, वे शाक्त होते हैं ।"

नीहार हँसकर बोला—"जाने दो इन बातों को, पर याद रक्खो कि हमें जो कण्टक रस मिला है, वह वैष्णव कहानी से ही मिला है और जो लोग वैष्णव नहीं हैं, उन्हें भी यह रस कृष्ण-पूजा का अनुसरण करके मिला है ।"

१५

अब एक नया विषय छिड़ता देखकर सब लोग बरामदे में एकत्र हो गये। मालूम होता था कि अध्यापक महोदय कक्षा में नहीं थे। इसीलिए छात्रों को यह मौक़ा मिल गया कि वे आपस में बतकही करें।

सब लोगों ने एक साथ प्रश्न किया—"यह क्या बात है? कृष्ण के साथ कण्टक का क्या सम्बन्ध है?"

"बात यह है कि कृष्ण तो राधा को बाँसुरी बजाकर आकर्षित करते थे, पर जो स्त्रियाँ राधा से जलती थीं वे भला क्यों खुश होती? वे बहुत दुखी होती थीं, उनकी छाती पर साँप लोट जाता था।"

एक ने कहा—"ठीक ही है, दुनिया में दो तरह के लोग हैं। शरीफ़ और पड़ोसी। ये ईर्ष्यालु स्त्रियाँ बड़ी सच्चरित्र थीं, उन्हें किसी ने बाँसुरी के द्वारा नहीं पुकारा, पुकारा तो राधा को पुकारा, इसलिए उनकी निगाह में दोष राधा का ही था।"

नीहार बोल उठा—"बिल्कुल ठीक है, पर इसके बाद वाली बात भी सुनो। क्या राधा को इससे कष्ट पहुँचा? नहीं। राधा को जितनी ही बाधायें मिलती गयीं, उसका सुख उतना ही बढ़ता गया। यह बिल्कुल वही हुआ कि मर्ज़ बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की।"

हरिहर बोला—"मुझे प्रेम का तजुर्बा तो नहीं है, पर एक साक्षात् तजुर्बा है। वह यह कि मुझे संगीत से ज़रा प्रेम है, इसलिए मैं प्रतिदिन प्रातःकाल कुछ अलाप करता हूँ। अब यह कहो कि इससे किसी के बाप का क्या आता-जाता है। पर पड़ोसी यह समझते हैं कि मैं ख़्वामख़्वाह उन्हें परेशान करता हूँ, इसलिए वे इस ढंग से गालियाँ देते कि मैं समझ जाऊँ कि मुझ पर ही यह वर्षा हो रही है, पर कर कुछ भी न पाऊँ क्योंकि कानूनी रूप से वह गालियाँ मुझ पर नहीं पड़तीं। कुछ भी हो इससे गाने का रस बढ़ जाता है।"

पीछे से किसी ने बहुत महीन आवाज़ में कहा—"तुम गीत के कांटे बोते हो और तुम्हारे पड़ोसी गालियों के।"

एक दूसरे साहब उधर से तमककर बोले—"कहाँ कृष्ण-कन्हैया की बात हो रही थी और बीच में यह मुए मनहूस की बात छेड़ दी। आखिर कुछ हद भी हो।"

संगीतशास्त्र के प्रति इस प्रकार कटाक्ष से कोई भी नौजवान खुश नहीं हुआ। बात यह है कि उनमें से कोई खुला और कोई छुपा रुस्तम था। हरिहर ने हहराकर कहा—"दुनिया में मनहूसों की ही संख्या सबसे अधिक है, पड़ोसी तो पाजी होते ही हैं। कहा है न—'गुन न हिरानो गुन गाहक हिरानो है।' गाँव का जोगी जोगड़ा, आन गाँव का सिद्ध। पड़ोस में कोई गुणी व्यक्ति पैदा हो, ये लोग नहीं चाहते। पर हम लोग भी ऐसे हैं कि पड़ोसियों का नाकता बन्द कर देते हैं।"

"आखिर इन लोगों से पार पाने का उपाय क्या है?"

"उपाय बहुत ही साधारण और सुपरिचित है। एक लगाए चार पाए। यदि वे हम पर क्रोध करते हैं तो हम समझेंगे कि जुकाम के कारण हँसने के बजाय वे खाँस रहे हैं। वे क्षमा के योग्य हैं—ऐसा सोचकर दर्द के साथ खिड़की के सामने खड़े होकर और ज़ोर से गाने लगेंगे।"

अमिय बोला—"पर मैंने सुना था कि कला का उद्देश्य टीस पैदा कर देना है, पर तुम्हारे वर्णन से तो यह मालूम होता है कि तुम चीस पैदा करते हो, इसी कारण वे खीस काढ़ते रहते हैं।"

नीहार ने कहा—"केवल यही एक चिन्ता का विषय नहीं। और सुनो—दोनों हाथ सामने फैलाकर संगीतदेवी के इस आह्वान को क्या पड़ोसी संगीत-चर्चा कहेंगे। उनकी राय में तो तुम गीत के समुद्र में गोता लगा रहे हो। संगीत तो सीखने से रहे। केवल गोता लगाते रहोगे।"

दूसरे मित्रों ने कहा—"मित्रवर, तुम इससे घबड़ाओ नहीं। अपने गीत को प्रबल शक्ति द्वारा सबको स्तब्ध कर दो। गीत में घायल

करने की शक्ति है तो क्या, चाँद में भी तो कलंक है।"

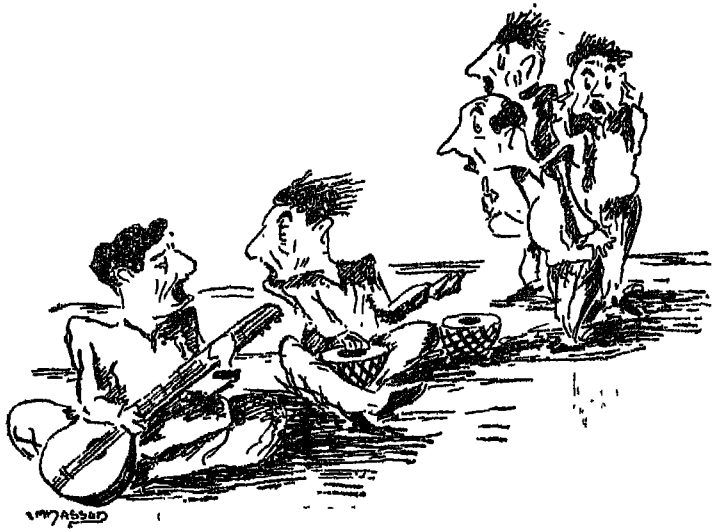

गीत के समुद्र में गोता

नीहार ने कहा—"चाँद में केवल कलंक ही नहीं है फन्दा भी है। बेवकूफ़ बनाने का फन्दा!"

एक ने उसे टोकते हुए कहा—"क्या बेतुकी बात कही है, तेली रे तेली तेरे सर पर कोल्हू!"

नीहार कुछ नाराज़ होकर बोला—"समझते तो हो नहीं, और दाल-भात में मूसरचन्द बनकर ख्वामख्वाह कूद पड़ते हो। चन्दा में फन्दा क्या है, यह तभी समझोगे जब दिमाग़ पर ज़रा रन्दा फेरोगे। चाँद देखते ही तरह-तरह की मूर्खतापूर्ण बातें मन में दौड़ने लगती हैं। जो पूर्ण चन्द्र हुआ तब तो कोई बात ही नहीं। चाहे मौसम हो या न हो, कोयल कूकने लगेगी और मन्द शीतल समीर बहने लगेगी। न मानो तो जाकर सिनेमा में पूर्णिमा के दृश्य देख आओ। किसी सिनेमा में चाँद का दृश्य दिखलाया गया हो और उसके साथ

ये बातें न हों ऐसा हो नही सकता। चाँद की रोशनी से मुझे अन्धकार अच्छा लगता है।"

"तुम्हारी बातें कुछ-कुछ ऐसी मालूम होती हैं, जैसी मनुष्यों से घृणा करनेवाले लोगों की हुआ करती हैं।"

"नहीं, यह बात नहीं। चाँदनी हमें ठगती है, पर अन्धकार हमें ठगता नहीं। अपनी असलियत चाँदनी में मालूम हो सकती है या अन्धकार में?"

"रहने दो बाबा, तुम तो दार्शनिकों की तरह बातें करने लगे। तुम्हारी बात समझ में नहीं आती।"

नीहार ने आगे यह आलोचना करनी नहीं चाही। बोला—"देखो, वह अध्यापक प्रसन्न बाबू आ रहे हैं। वे हमारी आलोचना सुनकर प्रसन्न नहीं होंगे, इसलिए चलो क्लास में। हम उन्हें अप्रसन्न नहीं करना चाहते।"

रात के समय प्रद्युम्न ने बातचीत करते समय अपनी दुलहिन को सारी बात बता दी। सुरधुनि इस पर हँसकर लोटपोट हो गयी! वह बोली—"कालिज में पढना और साथ ही शादी करना, ये दोनों बातें एक साथ नहीं चल सकतीं। इसी से यह सज़ा मिली है।"

× × × ×

फिर सुरधुनि ने अपनी तरफ़ से उन बातों को भी सुनाया, जो उस दिन दोनों के टहलने के कारण पैदा हुई थी। कौशल्या फूफी ने जो बाण चलाये थे उनका भी उल्लेख किया। प्रद्युम्न सुनकर दंग रह गया। बोला—"अजीब दुनिया है कि सब लोग डंक मारने के लिए तैयार रहते हैं।"

हँसकर सुरधुनि बोली—"यही तो मैं भी देख रही हूँ। शूल ही मिलते हैं, फूल की आशा कम है।"

प्रद्युम्न बोला—"पर हम तो किसी का कुछ बिगाड़ते नहीं, फिर लोग ऐसा क्यों करते हैं?"

"अच्छा ही करते हैं, क्योंकि इससे आँखें खुलती हैं।"

"तो क्या हमारी आँखें बन्द हैं?"

"हाँ, कुछ-कुछ बन्द हैं।"

"हमें क्या बुरे-भले का पता नहीं है कि लोगों को हमें समझाने की ज़रूरत होगी ?"

"हाँ, ज़रूरत है। वाक्य-रूपी अधरों से छूटे तीरों से तो यह आशा करनी चाहिए कि सुधा की वर्षा करें, पर फूफीजी जैसी प्रकृति के व्यक्ति उनसे ज़हर उगलने का काम लेते हैं।"

प्रद्युम्न बोला—"वाह तुमने तो बड़ी कवित्वपूर्ण बात कही। कहो किस कवि से ये बातें सीखीं ?"

"बिल्कुल ठीक, मैंने पुस्तक में ये बातें पढ़ी थीं, अच्छी लगीं, इसलिए याद रहीं।"

"ऐसी बात तो कालिज में सिखानी चाहिए, न मालूम वहाँ क्या-क्या बेकार बातें सिखाते हैं ?"

"हम लोग घर बैठे कितनी ही बात सीख लेती हैं, समझे गुरुजी महाराज !"

"गुरुजी महाराज नहीं, कहो आर्यपुत्र !"

"और तुम मुझे क्या कहोगे ?"

'कहूँगा 'हला पिय सही' और इसके उत्तर में तुम और पास आकर कहोगी 'अज्जउत्त'।"

सुरधुनि को उस दिन टहलने की बात याद आगयी, बोली—"तुम पुरुष भी बड़े कंगाल होते हो। उस दिन उन नौजवानों ने हमारा किस प्रकार पीछा किया था।"

प्रद्युम्न ने मुँह टेढ़ा करते हुए कहा—"वे लोग आवारा थे, पर उनको दोष भी नहीं दिया जा सकता। मेरी समझ में नहीं आता कि उन्हें दोष दिया जाय, या उनकी प्रशंसा की जाय ?"

"इसका क्या कारण है ?"

"कारण तो स्पष्ट है। घूरना भी एक तरह से प्रशंसा करना है। जिसे घूरा जाता है, उसकी तारीफ़ तो की ही जाती है साथ ही उस व्यक्ति को दाद भी दी जाती है जिसने उसे चुना है।"

सुरधुनि बोली—"आवारा कहीं के !"

"यह अवारापन नही है, बल्कि विश्व का सबसे बड़ा सत्य है! जिसे चाहता हूँ उसे दुनिया की आँखों से परखना चाहता हूँ।"

"दूसरे शब्दों में तुम बाँटकर उपभोग करना चाहते हो, शायद तुम्हारे कालिज के साथियों और साथिनों ने यही सिद्धान्त निकाला है।"—सुरधुनि की आँखों में कृत्रिम क्रोध कौंध गया।

प्रद्युम्न सम्हल गया कि कहीं यह कृत्रिम क्रोध वास्तविक क्रोध में परिणित न हो जाय, इसीलिए उसने मोड़ लेते हुए कहा—"जिस शूल से आघात मिलता है, खोजने पर उसी में कुछ रस भी मिलता है। प्रयास भी यही होना चाहिए कि शूल में फूल देखा जाय।"

"जाने भी दो रसिक जी महाराज!"

कुछ भी हो, बादल छँट गये और उनकी मधुरात्रि रस से भर गई।

१६

प्रद्युम्न और नहीं सह सका। उसने मन-ही-मन हिसाब लगाना शुरू किया कि क्या उसके सभी विवाहित मित्रों की दशा उसी की तरह है? क्या सबके यहाँ नई दुलहिन इस प्रकार रिश्तेदारों की छाँह और घूँघट की ओट में छिपी रहती है? ऐसा तो मालूम नहीं होता।

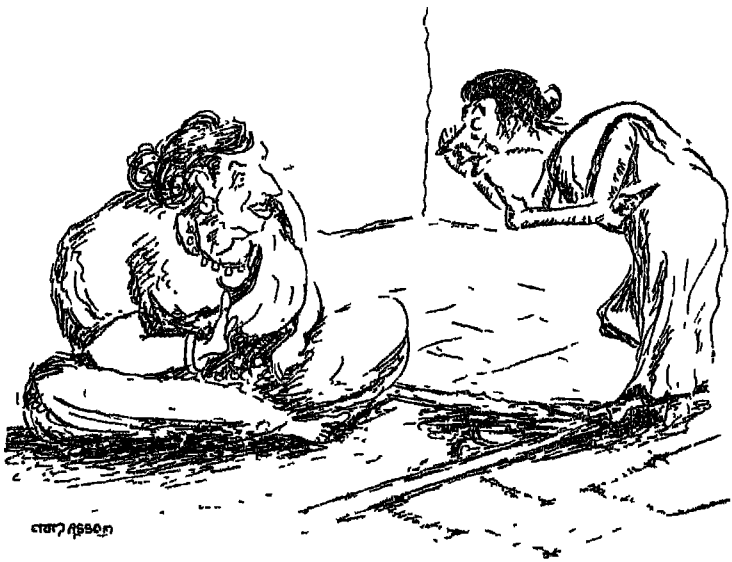

रिश्तेदारों की छांह.

जगबन्धु को ही लिया जाय। उसकी शादी होने ही वाली है। देहात का रहने वाला है, पर उसके घर में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं, जो उसकी नई दुलहिन पर ग्रहण की तरह छा जाय। यहाँ अजीब हिसाब-किताब है, मानो दिन में पति के कमरे में नई दुलहिन आयी

कि उसका चरित्र भ्रष्ट हो गया। बात कुछ कर्णकटु है, पर जब ऐसी दयनीय अवस्था है तो इन्हीं शब्दों में सोचना पड़ता है। सबसे बड़ी मुसीबत तो यह है कि हम चूँ तक नहीं कर सकते।

और यह सुरधुनि भी अजीब व्यवहार करती है। यदि वह मौका लगाना चाहे तो क्या लग नहीं सकता? ऐसी बात नहीं है पर वह लज्जा और कुछ हद तक अभिमान के मारे, मौका स्वयं सामने आ जाय तो भी, उसका फायदा नहीं उठाती। यों तो वह तुलसी की कविता से मिलती है, पर दूसरों का साथ होते ही वह चन्दवरदाई के काव्य की तरह हो जाती है। दिन में वह अपने को कभी खोलती नहीं, नौकरानियों के द्वारा पहिनायी हुई तरह-तरह की साड़ियों में मुँदी पड़ी रहती है। दिन भर बातें एकत्र होती रहती हैं, रात को उनकी सिटकनी खुल जाती है।

उस दिन रात को यही बात चली। माँ के विरुद्ध विद्रोह करने का साहस प्रद्युम्न में नहीं था। वह अधिक से अधिक सुरधुनि को भड़का सकता था। बोला—"जानती हो सुरधुनि, कालिदास ने कहा है कि जो सुन्दर है वह हर हालत में सुन्दर है। कमल का फल सेवार से घिरा रहता है, फिर भी वह सुन्दर मालूम होता है।"

सुरधुनि बोली—"कालिदास महोदय को अब क्या कहा जाय। वे अजीब चरखटे थे।"

प्रद्युम्न बोला—"आजकल की आधुनिक स्त्रियों से, जो पैरिस से लेकर न्यूयार्क तक फैशन का अध्ययन करती रहती हैं, किसी ने कालिदास का काव्य पढ़कर यह नहीं कहा, तुम ऐसा करो। फिर भी उन लोगों ने समझ लिया है कि जब वल्कल से शकुन्तला सज सकती थी, तो बग़ल कटी हुई और सीने तक की पोशाक भी मेम साहबों के लिए सुन्दर हो सकती है।"

सुरधुनि ने कृत्रिम क्रोध से कहा—"तुम तो बड़ी दूर की कौड़ी लाते हो। पहले से क्यों नहीं कह दिया कि तुम्हें अँगोछा पहनी हुई मेम पसन्द है।"

कहकर सुरधुनि दरवाज़े की तरफ़ चल पड़ी। विपत्ति की लाल

वत्ती देखकर प्रद्युम्न दौड़कर सुरधुनि के सामने खड़ा हो गया। सुरधुनि पहले से अधिक तैश में आती हुई बोली—"ठीक है, स्त्री पर बाण-प्रयोग नहीं करोगे तो किस पर करोगे? मुझे न ब्याह कर कालिदास मार्का किसी सन्तनी को ब्याह लाते तो छठी का दूध याद करा देती।"

प्रद्युम्न की समझ में यह बात आ गई कि मोक्षदा जब अपने हाथ से सुरधुनि को शिफौन की साड़ी और गलकट ब्लाउज़ देगी, तभी प्रद्युम्न का यह शौक पूरा होगा कि सुरधुनि आधुनिका बनकर उसके साथ टहले। दूसरे शब्दों में भय दोनों के मन में था।

"तुमने मेरा हाथ नहीं छोड़ा? देखना कहीं शास्त्रों के विरुद्धाचरण तो नहीं हो रहा है?"

इसके उत्तर में प्रद्युम्न और पास चला आया, इतना पास कि अब कुछ कहने-सुनने की ज़रूरत नहीं रही। पर थोड़ी देर में ही सुरधुनि कृत्रिम कोप से बोली—"छोड़ो-छोड़ो। लोग क्या कहेंगे?"

प्रद्युम्न मुस्कराकर बोला—"मैं तो तुम से यह उम्मीद करता हूँ कि तुम कहोगी 'मोहन मोसे करत रार, बहियां मरोर'..... इत्यादि।"

इसके उत्तर में सुरधुनि बोली—"क्या आजकल यही राब सिखलाया जाता है?"

"आजकल क्यों, इसका तो इतिहास कृष्ण कान्हा के समय से है, कौन जाने उससे भी पहले से हो।"

"तो तुम कृष्ण कान्हा हो, और मैं गोपी?"

"नहीं, तुम राधा हो।"

"मैं राधा कैसे हो सकती हूँ? राधा होने के लिए यह ज़रूरी है कि मैं तुम्हारी मामी होती।"

प्रद्युम्न को इसका कोई उत्तर नहीं सूझा, इसलिए उसने दूसरा उपाय किया। यों तो दिन में सुरधुनि का जूड़ा दूसरे ढंग से बाँधा जाता, पर रात को उसे ढीला कर दिया जाता था। प्रद्युम्न को जब उत्तर नहीं सूझा तो उसने एक ही झटके में जूड़ा खोल दिया। फिर वह उसे नये फैशन के अनुसार बाँधने लगा कि देखें इस प्रकार वह

कैसी लगती है।"

सुरधुनि को अपने हाथों जूड़ा बाँधने का अभ्यास नहीं था। बड़े घर की बेटी और बड़े घर की बहू थी, कोई-न-कोई जूड़ा बाँधने वाली मिल जाती थी, नहीं तो नौकरानी तो थी ही। पर ये लोग पुराने ढंग से ही जूड़ा बाँधती थीं। अपने हाथ से जूड़ा बाँधना कठिन था, केवल यही बात नहीं, उस प्रकार जूड़ा बाँधना ख़तरे से खाली भी नहीं था क्योंकि न मालूम लोग क्या-क्या कहते? इसलिए वह पति के अनुरोध को न मान सकी। पर पति भी पीछे हटने वाला नहीं था, बोला—"तुम तो हर बात पर आपत्ति करती हो।"

"क्या किया जाय? तुम पुरुष सब-के-सब चोर हो, तुम चोरी करो और मैं सीनाजोरी! यह कैसे हो सकता है?"

प्रद्युम्न को इस बात से ठेस लगी, वह बोला—"हम तो चोर हैं, पर तुम लोग डाकू हो। शादी करने के बाद से ही हमारी दुर्गति शुरू हो जाती है।"

"दुर्गति की खूब कही। दुर्गति तो शादी के बाद हमारी होती है। ऐसी हालत हो जाती है मानो चोरी करते हुए रंगे हाथों पकड़े गये हों। कुछ कहते नहीं बनता और मार बेभाव की पड़ती है। जो आता है, वही एक धौल जमाता है। तुम लोग तो फिर भी कुछ कर सकते हो, क्योंकि तुम अबला तो नहीं हो।"

प्रद्युम्न ने फौरन इस बात का प्रमाण दिया कि वह अबला नहीं है। बोला—"सुनो, तुम्हें एक सच्ची घटना सुनाता हूँ, यह हमारे कालिज के होस्टल के बगल की घटना है। बहुत दिनों तक प्रेम करने के बाद एक महाशय ब्याह करने में सफल हुए थे। हाँ, वर और वधू दोनों की उम्र काफ़ी हो गयी थी, पर प्रेम के कारण उम्र कम मालूम होती थी।"

"हाय हाय, तो हम तो मारे गये!"

"नहीं, अब हम प्रेम शुरू करेंगे।"

"नहीं, मुझसे यह सब नहीं होगा। यदि कुछ ज्यादती करोगे तो कौशल्या फूफी के कानों तक बात चली जायगी।"

"दुहाई तुम्हारी ! तब तो फिर···"
"फिर क्या ? घर छोड़ जाओगे क्या ?"
सम्हलकर सुरधुनि बोली—"हाँ, तुम क्या किस्सा सुना रहे थे?"
"किस्सा यह है कि थोड़े ही दिनों में गुल खिलने शुरू हो गये।

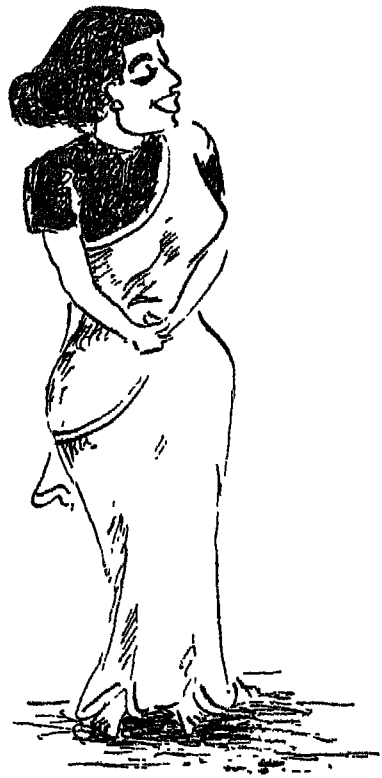

जो कभी मधुरा थी, वह अब...

जो षोडशी थी, वह साँड-सी हो गयी और उसकी जीभ दिन-रात ऐसी लपर-लपर चलने लगी कि मन का मीत उससे पनाह माँगने

लगा। जो कभी मधुरा थी, वह अब तिक्ता हो गयी और उसकी छुरी के सामने बेचारा प्रेमी हलाल होकर जलाल खो बैठा। कभी वह कुछ कहती, कभी कुछ। एक दिन वह बोली—"मैं यदि तुम्हारा पति होती, तो तुम्हें ज़हर दे देती।" इसके उत्तर में प्रेमी महोदय ने कहा—"और मैं यदि तुम्हारी स्त्री होता तो मैं उस ज़हर को पी जाता।"

सुरधुनि का मुँह ज़रा-सा रह गयी। बोली—"वे तो अपने रिश्तेदारों से दूर अकेले रहते थे, फिर भी उनकी यह हालत हुई?"

कहकर सुरधुनि चुप हो गया। प्रद्युम्न ने बहुत खुशामद की, पर सुरधुनि ने पूरी बात नहीं कही। बात यहीं तक घट कर रह गई।

प्रद्युम्न सुरधुनि की न कही हुई बात को सोचने लगा। हाँ, अब वह समझ गया। सारे दिन रिश्तेदारों से घिरी हुई सुरधुनि का श्वास बन्द हो जाता है, पर इससे छुटकारा कैसे हो?

बड़े दिन को जितनी गर्मी होनी चाहिए उससे कुछ अधिक ही थी। कई महीनों से यूरोप में शीत-युद्ध के कारण लोगों के दिमाग़ गरम हो रहे थे। इसके अलावा महँगाई का बाज़ार भी गर्म था। भाषा में नये-नये शब्द आये, जैसे चोरबाज़ारी, मुनाफ़ाखोरी इत्यादि। कालिज में छुट्टियाँ शुरू होने वाली थीं, इसलिए लड़के चीजें खरीदने के लिए बाज़ार में निकल पड़े थे। पर जब होमाग्नि ने देखा कि चीज़ों के दाम बढ़े हुए हैं तो वे अपने मेस में लौट आये। अपने कमरे में देखा कि भूपण्डी सेन काली की तसवीर देख रहा था।

वह बोला—"क्यों जी इस तसवीर के सिवाय और कोई चीज़ नहीं खरीदी ?"

"नहीं, इसको देख रहा हूँ।"

"प्रार्थना कर रहे हो कि इम्तिहान के दिन और आगे हटा दिए जायँ। इसको छोड़ो। प्रार्थना का ज़माना गया। स्ट्राइक करो। इस युग में वही सबसे बड़ा अस्त्र है।"

जय काला बाज़ार की.

मित्र ने कहा—"अब तो काली वरदान नहीं दे सकती, बल्कि काला बाज़ार से ही वरदान मिल सकता है। काली नर-मुण्डमाला पसन्द करती है, किन्तु काला बाज़ार तो नरमुण्डों से फुटबाल खेलता है।"

होमाग्नि ने बाधा देकर कहा—"पर एक भारी फर्क है। काली मैया खुलेआम नर-मुण्डमाला से खेलती थी, किन्तु अब फैशन बदल जाने

से हाथ में जहाँ नंगी तलवार थी, वहाँ अब बहीखाते और थैली है। पहले काली मैया के पैरों के नीचे महादेव जी बसते थे, अब सारा भारत ही काला बाज़ार की महाकाली के पैरों के नीचे रौंदा जाता है।"

कहीं से बहुत शोर सुनायी पड़ा। कोई मेस का दरवाज़ा इतना ज़ोर से खटखटा रहा था कि मालूम होता था, टूट जायगा। एक छात्र ने दौड़कर दरवाज़ा खोला तो चनपटी चट्टो साहब घुस आये। लोगों ने चनपटी की कनपटी गर्म करते हुए कहा—"प्यारे, क्या बात है ? इस तरह भाग क्यों रहे हो ?"

हाँफते हुए चनपटी ने इतना ही उत्तर दिया—"गुण्डे !"—और फिर चुप हो गया।

छात्रों ने कहा—"गुण्डा ! हमारे मेस पर गुण्डों का हमला हो गया ? देखें तो गुण्डे कैसे होते हैं ?"

सब लोगों के देश-प्रेम ने ज़ोर मारा। वे ऐसे तैयार हो गये मानो डांडी में नमक-सत्याग्रह करने के लिए तैयार होकर आगे बढ़ रहे हों।

चनपटी ने सम्हलकर कहा—"गली में गुण्डे नहीं आये। वे कल्लू टोला के मोड़ पर थे कि बस मैं सरपट भागा। एक बुड्ढे को छुरा दिखाया और मैं दौड़ा। बुड्ढा रोने लगा और मैं यहाँ पहुँच गया। समझे ? पहले आप, फिर बाप।"

होमाग्नि अधिक सहन न कर सका। वह घर के कोने में जाकर लेट गया। घर कहना तो उचित न होगा कोठरी कहना चाहिए। थोड़ी देर बाद कई मित्र वहाँ एकत्र हुए। वे लोग इरादा करके आये थे कि बड़े दिन पर किसी को दुःखी नहीं रहने देंगे।

मित्र भुशंडि ने कहा—"भाई चनपटी, तुमने भागकर बहुत अच्छा काम किया। तुम्हारा जीवन तो दूसरों के लिए है। तुमको यह अधिकार नहीं कि उसे किसी तरह जोखिम में डालो। लड़ाई में अच्छी सेनाओं को सामने खड़ा कर दिया जाता है। इसी तरह नेता लोग पुलिस के सामने दूसरे के लड़कों को खड़ा करके जनता की लड़ाई को जीतते हैं। इसी तरह इतने दिनों से ये ड्यूक ऑफ़ वेलिंगटन की तरह

नरमुँडमाला छिपाकर काम में लाई जाती है। काली मैया वाटर्लू की लड़ाई जीतने आ रही हैं।"

बातें इसी तरह चलने लगीं। इन मित्रों को पता चल गया था कि होमाग्नि पश्चिम में पला हुआ था। बंगालियों की ऐसी जातिगत दुर्बलता से परिचित नहीं था। इसी से वह ऐसा दुखी था।

अब बातें सुनते-सुनते वह बिस्तर पर बैठ गया और व्यंग करते हुए कहा—"आत्मसम्मान सम्पूर्ण रूप से निजी वस्तु है। उसकी रक्षा करना या न करना यह भी निजी बात है। पर हमने विश्व के लिए अपना जीवन उत्सर्ग कर रखा है, इसीलिए आत्मसम्मान को जेब में रखकर देश के लिए दूसरों के अपमान को सहते हैं।"

प्रेमांशु ने कहा—"होमाग्नि, तुम तो होम की अग्नि की तरह जल उठे।"

होमाग्नि ने व्यंग करते हुए कहा—"हाँ, जब दूसरों के लिए ही जीवन उत्सर्ग कर रक्खा है, तो फिर उसी तर्क से दूसरों की चर्चा करना, दूसरों के दोष खोजना, यह हमारा धर्म है। इसी में शक्ति और समय लगाना चाहिए।"

उधर से कविवर बोल उठे—"इसी कारण वैष्णव कवियों ने परकीया प्रेम का इतना गुण गाया है। परकीया न हो तो फिर राधा क्या और जब राधा नहीं तो फिर कृष्ण क्या ?"

भुशुंडि होमाग्नि को बहुत पसन्द करता था, बोला—"मान लो तुम सिर्फ़ अग्नि होते, रसोइये महाराज के चूल्हे की आग या मेम साहब के मुँह की सिगरेट की आग, तो फिर अग्नि होना ही व्यर्थ होता।"

नीहार ने कहा—"मान लो तुम्हारी पत्नी तुम्हें अजी कहकर पुकारे, तो वह रस उत्पन्न करने वाला न होकर रस का घातक होगा। इसके विपरीत यदि वह तुम्हें होमा डार्लिंग कहकर पुकारे तो ऐसा मालूम होगा जैसे सारी पृथ्वी तुम्हारे सामने फिरकियाँ ले रही है।"

"तुमने ठीक कहा, इसीलिए पहले के लोग कहते हैं, पत्नी या धर्मपत्नी, आजकल के आधुनिक लोग कहते हैं वाइफ़।"

लोगों ने कवि से कहा—"भई तुमने जब इतनी कृपा की तो यह

भी बताओ कि पत्नी और वाइफ़ में क्या फ़र्क है। इसके बिना प्रसंग पूरा नहीं होगा।

नीहार ने कनखी से नवविवाहित मित्र की ओर देखा, फिर बोला—"डरता हूँ कि कहीं सिडीशन या रानिद्रोह की गिरफ़्त में न आ जाऊँ।"

"डरो मत। यहाँ हम सभी विश्व-प्रेमी हैं, यही नहीं, हम सभी कवि भी हैं।"

नीहार बोला—"तो सुनो, धर्मपत्नी का अर्थ है, सर्वाधिकार सुरक्षित, नथनी-लटकन से सुशोभित, या यों भी कह सकते हो नख-दन्त शोभित घूँघट वाली, जिसे लोग बहू कहते हैं। विवाह के बाद लोग उसे नहीं पाते क्योंकि वह घर की मालकिन और सास की पुत्र-वधू है। यदि उसकी बात याद आये तो रोना ही आता है।"

नीहार ने अपने साथियों को देखा, फिर बोला—"धर्मपत्नी को यों समझो कि वह एक गतिशील बोझ है। गले में हंसुली नहीं हार, ओठ पान के कारण लाल, मिल की मैली साड़ी पहिनी हुई, पैरों में बिछुओं की झुनझुन और महावर का रंग। घर में वह राज करती है, घर के सारे काज भी सम्हालती है, उससे शादी तो हो सकती है, पर प्रेम नहीं।"

प्रेमांशु ने व्याकुलता दिखाकर कहा—"तो फिर क्या हो सकता है?"

"होने को बहुत कुछ हो सकता है, चाहे वह किसी कस्बे की हो या किसी देहात की, उसे हवा देकर वाइफ़ बनाया जा सकता है।"

"तो फिर केवल नाम का ही झगड़ा है?"

लोगों ने इस प्रश्न का स्वागत किया, पर कवि अपने ही ढंग पर कहता गया—"जो तुम्हारी धर्मपत्नी है वह तुम्हारी बिल्कुल निजी चीज़ है, उसे तुम कपूर की तरह शीशी में बन्द रख सकते हो, वही उसका स्थान है, उसमें वह ठीक भी रहेगी। उससे शादी करो, उसे खाने-पहनने को दो, गहने दो, प्रेम करो या न करो। चाहो तो भीतर ही भीतर कर सकते हो। पर जिसे प्रेम कहते हैं, उससे वह कोसों दूर है।"

"और वाइफ़ की बात कहो ?"

"अरे भई वाइफ़, वह तो हम लोगों की लाइफ है। वह पास रहकर भी दूर और निकट रहकर भी दुष्प्राप्य होती है। वह जार्जेट और सेन्डल पहनती है। वह सवेरे से शाम तक तुम्हे उड़ाकर चलाती रहेगी। प्रातःकाल के शापिंग से लेकर सिनेमा तक वह जिन्दगी की बहार लूटती है और बेचारा पति लुटता रहता है। दफ्तर से आने से पहले देख लीजिये कि कहीं फुटबॉल मैच या कोई ऐसी बात है या नहीं, जिसमें फैशन वाली स्त्रियों के लिए जाना ज़रूरी है। अगर कोई ऐसी बात है, तब तो जान लो कि वाइफ़ महोदया वही तशरीफ़ ले गयी होंगी, फिर तुम टापते रहो।"

"इश्क और प्रेम की बात तो बतलायी ही नहीं।"

नीहार बोला—"तुम चाहो तो उससे प्रेम कर सकते हो, पर वह भी तुमसे प्रेम करेगी ऐसी कोई गारन्टी नहीं। क्या पता तुम प्रेम के काबिल ही न हो।"

होमाग्नि बोला—"प्रेम न सही, पर अपने लिए झील में जाकर सब कष्ट दूर करने का रास्ता तो बन्द नहीं है ?"

चनपटि पट्टो.

"हाँ, युग बदल गया है, ऐसा कर सकते हो, झील के पानी में अपने दुखों को शांत करो, या शराब की बोतल में उसे डुबा दो, एक ही बात है। डुबकी लगाई कि सब दुख मिट गये। यही कारण है कि कवितायें लिखी जाती हैं, लोग दफ़्तर से गैरहाज़िर हो जाते हैं, बेकारी का शिकार होते हैं और रिक्शों के नीचे आ जाते हैं। धर्मपत्नी के लिए भला ऐसी बातें कभी सम्भव होतीं ?"

सबने नीहार की प्रशंसा की कि क्या सूझ है। होमाग्नि ने

कुछ तैश में आकर कहा—"कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा, यह अच्छी बेपर की हाँक रहे हो। मैं तो यही कहता हूँ कि जब कोई शैली और रवीन्द्रनाथ की कवितायें पढ़ेगा, तो कविता भी करेगा और प्रेम की उड़ानें भरेगा और नून, तेल, लकड़ी की बात भूल जायगा। यह तो हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।"

उधर से गदाधर ने बेतुके रंग से, पर बड़े दर्द के साथ कहा—"कविता लिखो या प्रेम करो, पर इससे मकान वाला न तो किराये में रिआयत करता है, न बनिया तकाज़ा करने से बाज आता है, और न दूधवाला दूध में पानी कम मिलाता है।"

आज के दधीचि.

प्रेमांशु बोला—"तभी तो लोग कवि को कपि कहकर चिढ़ाते हैं, और कविता को कपिता कहते हैं।"

गदाधर ने टिप्पणी करते हुए कहा—"कवि शब्द इसीलिए लुप्त हो रहा है, अब तो सब पोयट हैं।"

नीहार बोला—"देखते हो, इस क्षेत्र में भी दूसरों का शब्द अच्छा लगता है। पोयट कहा तो आँख के सामने किसी महामहिमान्वित व्यक्ति का चित्र आ जाता है, पर कवि कहने से कपि के आसपास किसी बात की याद आती है और आशुकपि तो और भी खतरनाक है, मानो आशु शब्द की दुम जुड़ जाने से उसके कपित्व से भी उसकी दुम सामने आती है। रही दूसरों की चीज़ की अच्छी लगने की बात, सो यह देख लो कि बंगाली, जब भी गुस्से में

आयेगा, तो वह या तो हिन्दी बोलेगा या अंग्रेज़ी।"

सब लोगों ने इसका समर्थन किया, बात यह है कि सब लोग इस बात को समझ चुके थे कि परकीया के पति आसक्ति-भक्ति के मार्ग से कही आगे निकल गये है। अब परकीया का एक दूसरा अर्थ दिया गया है। अब अपना घर सम्हालते नही बनता, इसीलिए नये युग के दधीचि हम मध्यम वर्ग के लोग ही है।

एक ने मानो इसी बात को व्यक्त करते हुए कहा—"हम विश्व-मान्य मानव है। हाँ, इस युग के लोग मानव होने से पहले ही विश्व-मानव हैं।"

हमारे मेस में अजीब आबोहवा रहती है। बारह महीने में भी कोई दिलचस्प घटना नहीं होती, पर लोग इसकी पूर्ति दिलचस्प आलोचनाओं से कर लेते हैं। जगबन्धु ने खाने के बाद फिर परकीया-तत्व छेड़ दिया।

नीहार ने साथ दिया। बोला—"उदाहरणस्वरूप साली को लो,

आइ लव यू.

वह परकीया है, इसमें सन्देह नहीं। पर साली से 'सिस्टर-इन-ला' बड़ी होती है, क्योंकि यह नाम भी दूसरों की भाषा का है।"

राजनैतिक क्षेत्र में काम करने वाला राजीव बोला—"बहू कहने से कुछ रस नहीं मिलता, पर सजनी कितना अच्छा शब्द है। इससे भी अच्छा शब्द है डार्लिंग। विश्व-प्रेम का यही तो अर्थ है कि दूसरों की चीज़ को अपनाओ और अपनी छोड़ो।"

नीहार ने सम्पूर्ण रूप से इसका समर्थन किया, बोला—"साली मे सिस्टर-इन-ला कानून में ज़्यादा मुआफ़िक आती है। मैं प्रेम करता हूँ, यह कहने की अपेक्षा 'आई लव यू' कहना अधिक प्रिय मालूम होता है। इसमें न मालूम क्या व्यंजना आ जाती है और सागर-पार की न मालूम कितनी ही नायिकायें आँख के सामने नाच उठती हैं।"

एक ने पूछा—"ज़रा व्याख्या के साथ कहिए।"

नीहार बोला—"विवाह नामक स्वार्थी और आत्मनेपदी कार्य के पहले सभी स्त्रियाँ परस्मैपदी यानी बहुत प्रिय रहती हैं और उनकी बहिनें भी। याने उनकी बहिनें विश्व-भगिनी की तरह मीठी अर्थात् पंचशर का लक्ष्य-स्थल रहती हैं।"

जगबन्धु इन बातों को सुनकर कुछ अकचका गया। सब लोग उस पर हँस रहे थे, इसलिए उसने अपने ऊपर से दूसरों की दृष्टि हटाने के लिए 'टेम्पेस्ट' पुस्तक के अन्दर से एक लिफ़ाफ़ा निकाला। पढ़ने-लिखने में वह फिसड्डी था, इसलिए वह हर समय पुस्तक साथ रखता था। शायद वह समझता था कि पुस्तक साथ में रहने से उसका कुछ न कुछ अक्स उस पर पड़ेगा और देवी सरस्वती की कृपा हो जायेगी। उसने सीना तानकर कहा—"यह देखो क्या चीज़ है?"

एक मित्र ने व्यंग से कहा—"टेम्पेस्ट के अन्दर से और क्या निकलेगा? बहुत होगा तो 'टी पाट' निकलेगा। कहते हैं न 'टेम्पेस्ट इन ए टी-पाट'।"

जगबन्धु बोला—"नहीं, ऐसी कोई बात नहीं।"

सब लोग दौड़कर छीनाझपटी करने लगे। उसमें एक फ़ोटो निकला और वह फ़ोटो नई दुलहिन सुरधुनि का था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि बड़ी दिलचस्प चीज़ थी। एक तो पर-चर्चा और तिस पर भी मित्र की दुलहिन। सबसे मज़ेदार बात यह थी कि यह

फ़ोटो उड़ाया हुआ था। प्रद्युम्न ने बड़े साहस से यह फ़ोटो लिया था। बात यह है कि दिन में फ़ोटो लेना सम्भव नहीं था और रात में फ़ोटो लेना उसकी फ़ोटोग्राफ़ी विद्या के बाहर था। सुरधुनि पान बनाकर उठी ही थी कि उसका फ़ोटो ले लिया गया था। पति को दिन में देखकर घूँघट काढ़ने ही वाली थी, पर साथ ही साथ चेहरे पर खुशी थी। इसी अवस्था का फ़ोटो था और उसमें लज्जा, खुशी, घबराहट, सभी का एक अपूर्व सम्मिश्रण था।"

होमाग्नि से सहन न हुआ। वह कमरा छोड़कर चला गया।

चित्र को लोगों ने तरह-तरह से घुमा-फिराकर देखा। एक मित्र ने कहा—"हूबहू हमारी सहपाठिनियों जैसी है! दुलहिन हो तो ऐसी हो।"

नीहार ने प्रतिवाद करते हुए कहा—"न कुछ जानो, न बूझो, बेकार में बातें बघारते हो। कैसी दुलहिन होनी चाहिए, इस संबंध में तुम्हें कुछ भी ज्ञान नहीं है। ख्वामख्वाह मित्र की स्त्री को घसीट रहे हो।"

इसके उत्तर में उसी मित्र ने कहा—"वाह यह भी कोई बात है, जो न जानूँ। एक श्रेणी में बैठकर जब तरुण और तरुणियाँ शिक्षा ग्रहण करती है, तो तरुणियों को देखकर यह अनुमान लगाना कठिन थोड़े ही है कि दुलहिन कैसी होनी चाहिए।"

"कठिन हो या न हो, तुम कर नहीं पाते, इतना मैं कह सकता हूँ, नहीं तो मित्र की स्त्री का फ़ोटो लेकर छीनाझपटी न करते। दूसरों से उधार ली हुई रोशनी से तुम इसलिए चकाचौंध हो जाते हो, कि तुम में स्वयं रोशनी का अभाव है। हमारी सहपाठिनी मिस बटव्याल को तुम दूर ही से देखते हो, जैसे हरिजन मन्दिर के बाहर से मूर्ति को देखते हैं। अधिक से अधिक तुमने इस प्रकार की धारणायें बनायी हैं कि वह गहने न पहिने, लम्बा घूँघट न काढ़े और बड़े घर की स्त्रियाँ जैसे बोलती-चालती हैं वैसे ही और उसी 'ऐक्सेन्ट' में बोले-चाले। और भी कुछ सीखा है? यह तो केवल बहिरंग हुआ।"

जगबन्धु ने बाधा देकर कहा—"राजीव तो बहुत सी स्त्रियों के सम्पर्क में आ चुका है।"

पर उत्तर केशव ने दिया—"इसी कारण वह स्त्रियों का वर्णन करते समय किसी तरह रंगीन भाषा से काम नहीं लेता। वह तो उन्हें मानवी करके दिखलाता है।"

जगबन्धु नाराज हो गया। बोला—"मैं रंगीन भाषा से काम लेना चाहता हूँ, पर मौका तो मिले।"

एक ने व्यंग किया—"शायद इसमें दोष सहपाठिनियों का है। क्यों ऐसी ही बात है न?"

"अवश्य। स्त्रियाँ जिस प्रकार से उपेक्षा और निस्पृहता दिखलाती है, उसमें उन्हीं की हानि है। यह माना कि सभी पुरुष इस योग्य नहीं होते कि उनका आदर किया जाय, पर कोई भी पुरुष आदर-योग्य नहीं है, यह भी हद है। यदि स्त्रियों ने यही रुख क़ायम रखा तो पुरुष सत्याग्रह करने के लिए मजबूर हो जायँगे।"

भोजन से रूठ जायँगे.

स्त्रियों का पक्ष लेकर राजीव ने जवाब दिया—"उनका भी कोई दोष नहीं। अपनी बड़ी बहिनों की अभिज्ञता से इनको यह ज्ञात हो गया है कि विवाह से पूर्व जो पुरुष प्रेम निवेदन करते समय कहता रहा है कि मैं तुम्हारे योग्य नहीं हूँ, वही मनुष्य विवाह के पश्चात् इस वाक्य को सत्य प्रमाणित करने की बहुत चेष्टा करता है।"

केशव ने कहा—"भाई साहब सोच-समझ कर बात करो। यदि बिना सोचे-समझे अपनी स्त्री के सामने ऐसा ही कुछ कह डालोगे तो तुम्हारी क्या अवस्था होगी, यह भी याद रखना।"

जगबन्धु झटपट बोला—"अवस्था और क्या होगी, आदि काल

से जो अस्त्र हमारे पास है वही चलायेगे, याने हम भोजन से रूठ जायँगे।"

रात बहुत हो गयी थी। उठते समय दार्शनिकता के साथ नीहार अपने मन ही मन बोल उठे—"उस अस्त्र से सामयिक विजय तो प्राप्त हो सकती है पर याद रक्खो, जिस बात को ईश्वर क्षमा करते है और पुरुष भूल जाता है उसी को नारी सदा के लिए याद रखती है।"

१९

पुस्तक की जिल्द में शायद बालों के तेल का दाग लग गया था। बालों के तेल का ही दाग था, यह कौन कह सकता है ?

ऐसी कोई ख़ास बात नहीं थी, पर इसी पर सनसनी फैल गयी ! जगबन्धु ने झट से प्रद्युम्न की पुस्तक छीन ली और वह उसे सूँघने लगा।"

"अजी शार्लक होम्स, क्या सूँघ रहे हो ?"

"नहीं, नहीं, शार्लक होम्स नहीं, उसका डाश शन्ड कुत्ता ही इस काम को कर सकता था।"—बीच में बोलते हुए नीहार ने कहा।

नीहार समझ गया था कि क्या मामला है। अभी न मालूम क्या तमाशा बने। मित्र को लक्ष्य बनाकर श्रेणी के बड़े-बड़े लड़के चाँदमारी करेंगे, और सो भी लड़कियों के सामने, इसलिए कुत्ते का प्रसंग छेड़कर उसने रुख़ बदलना चाहा।

पर रुख़ इतनी आसानी से नहीं बदला करते।

इस उम्र के लड़के न तो इतने कच्चे होते हैं और न इतने मुलायम। झांसा देकर उन्हें भटका देना आसान नहीं।

जिस दिन प्रद्युम्न की पुस्तकों पर नयी साफ़-सुथरी जिल्द रहती है, याने जिस दिन उन पर कोई दाग नहीं रहता उस दिन जगबन्धु-कम्पनी यह टिप्पणी करती है कि दुलहिन पुस्तकों के साथ सौत का व्यवहार करती है, नहीं तो उन पर मीठे हाथ का स्पर्श या मीठे बालों का कोई दाग क्यों नहीं है।

इसी प्रकार जिस दिन प्रद्युम्न अच्छी तरह पाठ याद करके आता है, (प्रश्न करके साथी उसका पता लगा लेते हैं) उस दिन वे यह उपसंहार निकालते हैं कि दुलहिन ने प्रद्युम्न का बाइकाट किया, इसीलिए यह बात सम्भव हुई। नहीं तो नयी दुलहिन पास में और सबक याद हो, यह कोई सोच सकता है ? यह तो असम्भव बात है।

यदि किसी दिन प्रद्युम्न देर से आता, तो यह बात भी विवाह के मत्थे ऐसे मढ़ दी जाती मानो जो लोग अविवाहित हैं, वे कभी लेट होते ही नहीं।

यदि वह मन लगाकर अध्यापक का व्याख्यान सुनता तो उसकी व्याख्या की जाती कि वह विगत रात्रि की घटनाओं को भूलने की चेष्टा कर रहा है और यदि वह मन लगाकर व्याख्यान नहीं सुनता, तो उसका यह मतलब निकाला जाता कि रात को कुछ तकरार हो गयी होगी। प्रद्युम्न अपने मित्रों की इन आलोचनाओं को नापसन्द करता हो, ऐसी बात नहीं। इनमें न मालूम कैसी सौंधी-सौंधी खट्टी-मीठी चटपटी चटनी का स्वाद आता था। उसकी शादी हुई है इससे उसके मित्र कभी जल नहीं सकते। उसका सुख देखकर भी नहीं जलते थे। क्योंकि ऐसे जलने की आदत हमारे में नही है अपितु हमारे पड़ोसियों में है।

पर आज तेल के दाग के सम्बन्ध में बहुत अधिक बातें हो गयीं। पीछे की सीट के एक स्थायी अधिवासी ने आवाज़कशी की—"तेल का दाग तो बहुत मामूली बात है। यदि यह कांड विलायत में होता तो होठों का सिंदूर मिलता—चैरी की तरह लाल होठों का सिंदूर।"

इस प्रकार के वक्तव्य से मित्रमण्डली नाराज़ हो गयी, यह देखकर वह छात्र बोला—"विलायत में तुम्हें शादी भी नहीं करनी पड़ती। वहाँ तो यों ही सब चीज़ें मिल जाती हैं। इस देश में यदि एक आध हम में से शादी न करे तो हम लोगों की क्या हालत होगी?"

हरिहर नाराज़ हो गया। बोला—"आप इतनी बकबक कर रहे हैं, आप स्वयं शादी क्यों नहीं कर लेते?"

वह छात्र सीना फैलाकर ऐसे खड़ा हो गया मानो इनकलाब के सम्बन्ध में व्याख्यान दे रहा हो, बोला—"मैं और शादी! शादी तो पुराने ढंग के दकियानूसी लोगों के लिए है, विवाह के अलावा जिनके लिए कोई गति नहीं है। एक से गठबन्धन करके रहना बिल्कुल संकीर्ण चित्त का परिचय देना है। नये युग में इस प्रकार की संकीर्णता त्याज्य है। हम लोग नवजीवन-प्राप्त तरुण हैं। फिर हम शादी करके अपनी ज़िन्दगी को खटाई में क्यों डालें, हम लोग तो गेंद से खेलकर ही खुश

हैं। गोल करने में विश्वास नहीं करते, गोल किया तो सब खतम है।'

जगबन्धु की जल्दी ही शादी होने वाली थी। बोला—"नहीं आप तो मधुकर हैं मधुकर, फूलों का रस लेते फिरते हैं। मधुकर नहीं जोकर।"

उधर से उस छोकरे ने कहा—"आखिर इसमें बुराई क्या है? गीता में कहा है कि कर्म में तुम्हारा अधिकार है, फल में नहीं। हम नये ज़माने के सिपाही हैं, तुम इससे भी आगे जाते हो। हमारा यह कहना कि फल की हम परवाह ही नहीं करते और न हम फल चाहते हैं।"

हरिहर बोला—"एक पूस में जाड़ा नहीं कटता। अभी ठहरो जब कॉफ़ी हाउस से लेक तक रुआसे फिरते रहोगे, तभी पता लगेगा कि आटे-दाल का भाव क्या है। तुम्हारी तरह क्रान्तिकारी बनाने वाले लोग भी अंत में शादी करते हैं।"

इस पर वह छोकरा दूसरे ढंग से बोल उठा—"देखिये पढ़ने लिखने में मैं पुराना होते हुए भी सबसे पीछे हूँ, इसमें मेरी तकदीर ने साथ नहीं दिया, इसलिए बहुत सम्भव है कि शादी के मामले में तकदीर मेरा साथ दे।"

"इसका क्या अर्थ हुआ?"

"इसका अर्थ यह हुआ कि यदि किसी दिन मैं प्रेम के अहमकपने में फँस जाऊँ, तो मैं अपने रकीबों पर विजयी हो जाऊँगा।"

"तो इसका मतलब हुआ कि आप जिस शादी की बुराई कर रहे हैं, उसी में फँस जायँगे?"

"नहीं, मेरा मतलब हरगिज़ यह नहीं है। रकीबों पर विजय होने का अर्थ ब्याह के जंजाल में फँसना नहीं है। मुझे सभ्य नागरिक होने का कोई लोभ नहीं। लाभ पर दृष्टि है, लोभ क्यों करूँ?"

"लाभ तो इसी में मालूम होता है कि जिससे आप प्रेम करें उसे अपना बना लें।"

"अपनी-बपनी कोई नहीं बनती। गले में पत्थर के समान हो जाती है। छोटे हिटलर कहिये तो ठीक है। दिन को हिटलर और रात को मुसोलिनी, मूसलों की मार के मारे जान आफ़त में रहती है।'

कहते-कहते उस छोकरे ने देख लिया कि नीहार और प्रद्युम्न वहाँ से खिसक गये हैं। इससे उसका साहस और बढ़ा। बोला-

नात्सी सेनापति.

"उस दिन आपने उस मकान में, जहाँ शादी हो रही थी, एक लड़ाका औरत को नहीं देखा? बिना हथियार के सिर काटने को तैयार थी। शर्तिया कहता हूँ कि श्रीमती हिटलर के जीवन का लक्ष्य है नात्सी सेनापति बनना, यानी उनके घर में कम से

कम एक दर्जन पोते-पोतियाँ होने चाहिएँ, जिनके शोर-गुल से प्रेम मरकर और भूत बनकर जान बचाने को भागेगा। गृहस्थ सन्यासी बनकर निकल जायगा। बच्चों को न तो डाँट सकेंगे और न सँभाल सकेंगे। 'घर में होगा पूर्ण स्वराज्य'—यह है हम लोगों की गृहस्थी।"

घर में होगा पूर्ण स्वराज्य.

उस छोकरे ने जो बात कही थी, उसमें सचाई का पुट था। पर कड़ुए शब्द सत्य होने पर भी सहे नहीं जाते। बहुत से मित्र इन बातों को नापसन्द करते हुए खिसक गये। छोकरे ने यह सोचा कि यदि उसने व्याख्यान जारी रक्खा, तो उसे शायद खाली बेंचों और मेज़ों

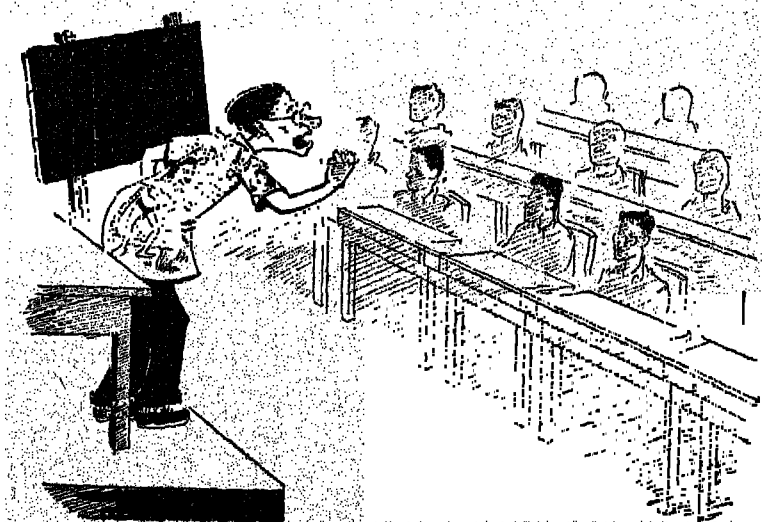

अरे नवीन! अरे कच्चे!...

के सामने बोलना पड़े। इसलिए जो कुछ कहना है, उसे जल्दी कह डालने की ज़रूरत है। वह बोला—"कवीन्द्र ने क्या ख़ूब कहा है—'अरे नवीन! अरे कच्चे! नवीन हम इस माने में हैं कि अभी हम यौवन से दूर हैं, कच्चे इसलिए हैं कि अभी हम मीठे नहीं हैं। इसलिए सब्र का फल मीठा है, इस कहावत के अनुसार हम प्रतीक्षा कर रहे हैं। इसके बाद हम मोर की तरह पूँछ उठाकर नाचते रहेंगे। तब सभी समझेंगे कि हिटलर सब कुछ कर सकता था पर नये युग के तरुण के प्रेम को नहीं रोक सकता था।"

२०

अन्त में सभी बातें नीहार के कानों में पहुँचीं। उसे बहुत बुरा लगा कि मित्रमण्डली में प्रद्युम्न के सम्बन्ध में इस प्रकार की बातें उड़ रही हैं। इस प्रकार मज़ाक उड़ाने वालों के थप्पड़ मारने की इच्छा होती थी पर निन्दकों की संख्या बहुत थी। एक-दो निन्दक होते तो उनसे निपटा जाता, पर इतनों से कैसे निपटा जाय ?

फिर किसी से इस सम्बन्ध में झगड़ने का अर्थ आग में घी डालना होता फलतः और अधिक निन्दा होती। सम्भव है कि सख्ती से पेश आने पर प्रद्युम्न को कालिज छोड़ने की नौबत आती।

इन बातों से भी नीहार को अधिक फिक्र इस बात की हो रही थी कि प्रद्युम्न का मन अभी कच्चे घड़े की तरह था और विवाह के बाद से वह एक कच्चे खिलाड़ी की तरह चल रहा था। कहा गया है कि विवाह एक बहुत बड़ा स्पोर्ट है और यह स्पोर्ट ही जीवन की लीला है। लड़कियों का मन पद्म की तरह होता है। सूर्य की रोशनी से, वायु के झोंकों से, पानी की फुहारों से उसे जगाना पड़ता है। तभी जीवन में पद्म के फूल खिलते हैं।

नीहार सोचने लगा। पहले के ज़माने में नई बहू अपने मन की कली खिलने के पहले ही पति-गृह में आ जाती थी। इसका नतीजा यह होता था कि उसे चाहे जिस प्रकार ढाला जा सकता था, पर अब यह बात नहीं होती। कली पहले से ही खिल चुकी होती है, उसका ढंग ढर्रा पहले ही बन चुकता है। सुरधुनि स्वतन्त्र वातावरण से आयी थी और यहाँ आकर वह एकदम सौ साल के पहले के भभकदार वातावरण में आ फँसी। शादी एक ऐसे सुशील और सुबोध बालक के साथ हुई कि वह उस वातावरण की घुटन में घुट-घुट कर मर जायगा, पर बाहर की हवा में निकलने का साहस नहीं करेगा। द्विविधा और लज्जा इनके सिवा कुछ नहीं था।

मित्र को इस सम्बन्ध मे कुछ मदद देने की जरूरत थी। यह काम और कोई नही कर सकता था, इसलिए नीहार ने ही अपने ऊपर यह काम ले लिया। जैसा रोग, वैसी ही उसकी दवा भी चाहिए।

जिस समय नीहार इस प्रकार सोच रहा था, उसी समय स्वय प्रद्युम्न वहाँ पर आ गया। उसके चेहरे पर आषाढ और आँखो मे भादो दृष्टिगोचर हो रहा था। पानी के पूरे आसार थे, पर कितना पानी था, यह कौन जाने।

नीहार समझ गया कि कोई इसी प्रकार की छोटी सी घटना हुई है, जिसके कारण मित्र की हालत ऐसी हो गई है। शायद कोई खास बात न हो, पर शादी के बाद परिस्थिति इस प्रकार हो रही थी कि कोई भी घटना चिनगारी का काम कर सकती थी। इस परिस्थिति मे जरा-सी बात मे सन्तुलन खो जाने का डर था। भला नीहार यह परिस्थिति कैसे लाये, जिसमे वह पैरो का सन्तुलन कायम

शादी का सन्तुलन.

रक्खे और साथ ही साथ हवा मे उड़े। प्रद्युम्न इस काम मे बिल्कुल अपटु सिद्ध हुआ था। साथ ही उसकी दुलहिन भी घुट-घुट कर मर रही थी।

इस सन्तुलन वाली बात को न समझने के कारण या समझकर

भी उसे क़ायम न रख पाने के कारण कई बार जीवन नष्ट हो जाते हैं। नीहार भी खिलाड़ी था, उसने पहले तो बहुत छूट दी और इधर-उधर की बातें करने लगा। अन्त में असली बात खुल गयी।

घर के सब लोग नाटक देखने गये थे। प्रद्युम्न भी बुलाया गया था, पर उसे नीचे स्टाल में बैठना पड़ा था। नीहार समझ गया कि मामला क्या है। बोला—"तो ऐसा करने में तुम्हे आपत्ति क्या थी? तुम फ़र्श पर तो नहीं बैठाये गये? फिर तुम्हें फिक्र क्या थी? मजे से नाटक देखते और बगल में दूसरे संगी-साथी तो थे ही।'

इसके उत्तर में प्रद्युम्न ने कुछ नहीं कहा, और वह एक किताब लेकर उसे देखने लगा। नीहार को एकाएक स्मरण हो आया कि अभी दो-तीन दिन पहले राजीव नामक छात्र ने लोगों को यह सुनाया था कि किस प्रकार उसने स्टाल में बैठकर एक गर्ल 'फ्रैंड' से सटकर सिनेमा देखा था।

शायद इसी कारण प्रद्युम्न को अफ़सोस था। पर नीहार यह कह सकता था कि गर्ल 'फ्रैंड' के साथ राजीव का सटकर बैठना और प्रद्युम्न का अपनी पत्नी के साथ सटकर बैठना दो भिन्न बातें थीं। एक क्षणिक सम्बन्ध था, जब कि दूसरा सम्बन्ध जीवन भर का था, इसलिए सिनेमा के अन्दर सटकर बैठे तो क्या और न बैठे तो क्या? इससे कुछ आता-जाता नहीं था। जहाँ सब कुछ प्राप्त है, वहाँ कुछ के लिए फिक्र करना बेकार है। जिसे सब कुछ प्राप्त है वह स्टाल में बैठकर शान्ति से नाटक देखे। तर्क का कहना यही था। यदि बगल में कोई बैठी है और बीच-बीच में कनखियों से उसे देखना है, तो रंगमंच वाले नाटक का रस नष्ट हो जाता है। हाँ, यह कहा जा सकता है कि नाटक ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है।

सोचने को तो नीहार इन बातों को सोच गया, पर दर्शनशास्त्र से न तो पेट भरता है और न मन का मैल ही दूर होता है। तथ्य यह था कि जब प्रद्युम्न ने यह व्यवस्था देखी, तब वह नाटक देखने ही नहीं गया।

नीहार ने पूछा—"आखिर तुमने न जाने का बहाना क्या

बनाया ?"

"बहाना यह बनाया कि तुम्हारे यहाँ रात को न्यौता है।"

नीहार ने कहा—"यह अच्छी बेवकूफ़ी रही। नाटक देखते तो मन बहलता, इस प्रकार कुढ़ने से क्या फायदा है। हर हालत में अपने को ताज़ा रखना चाहिए। चोर पर क्रोध करके फ़र्श पर रोटी खाना कोई अक्ल की बात नहीं कही जा सकती।"

"क्यों ? यहाँ तो मैं ही चोर बना हुआ हूँ।"

"तुम खुद ही चोर बनकर कोने में जा छिपोगे, तो मारे भा तुम्हीं जाओगे। तुम अपनी इस मनोवृत्ति को छोड़ दो। तुम चोर नहीं, मालिक हो। जिस चीज़ की तुम्हें आवश्यकता है, उसे सरलता से माँगो, यह नहीं कि ख्वामख्वाह पीछे हट जाओ।"

प्रद्युम्न को इस बात से कुछ ढ़ाढ़स नहीं बँधा। बोला—"मालिक समझने से ही कोई मालिक नहीं हुआ जाता।" नाटक में जाने के पहले सुरा एक बार कमरे में आयी थी, पर कुछ बोली नहीं।

नीहार खुशी में बोल उठा—"आयी थी, इसके माने यह हुए कि तुम जो चाहते थे, वह तुम्हें फौरन मिलता। पर मुँह खोलकर माँगते, तब न होता ? बिना माँगे तो माँ लड़के को दूध भी नहीं पिलाती।"

प्रद्युम्न बोला—"मेरी तो कुछ समझ में नहीं आता। मैं जब तुम्हारे यहाँ के बहाने से आ रहा था, तभी वह आयी। मैं कुछ सोच रहा हूँ या नहीं सोच रहा हूँ, इसकी उसे परवाह नहीं थी। बाहर जो लोग उसका इन्तज़ार कर रहे थे और शोर मचा रहे थे, उन्हीं की तरफ़ उसका ध्यान था।"

"तो वह बेचारी क्या करती ? यदि तुम उसका हाथ पकड़कर कहते कि सिर-दर्द का बहाना बना दो और कहो कि मैं नहीं जाती, तो फिर तुम्हारा काम बनता, पर कोई रुख़ तो दिखाते।"

प्रद्युम्न मान गया कि उसने इस प्रकार की कोई भी युक्ति नहीं की। नीहार बोला—"तुमने यह भी तो नहीं कहा कि चलो हम लोग चुपके से कहीं टहलने चले जायँ। यदि कहते तो देखते।"

प्रद्युम्न ने यह भी माना कि उसने ऐसा भी नहीं किया। नीहार

प्रोत्साहित होकर बोला—"तुम्हें चाहिए था कि सब के सामने उसका हाथ पकड़कर घसीट ले जाते, और सामने जो भी टैक्सी मिलती, उसी पर चढ़ बैठते और ड्राइवर से कहते, चलाओ।"

प्रद्युम्न के मानसिक नेत्रों के सम्मुख उस समय कौशल्या फूफी तथा जेल की अन्य पहरेदारिनों का चित्र आ गया। नीहार बोला—"तुम निकम्मे हो, तुमसे कुछ नहीं होने का। तुम बिल्कुल दुधमुंहे बनते हो और यह चाहते हो कि सूरधुनि हाथ पकड़कर तुम्हें रास्ता दिखलाये। ऐसा नहीं होता।"

प्रद्युम्न चुप रहा। वह धीरे से निकल गया। नीहार ने बहुत पुकारा, पर वह नहीं रुका। अन्त में नीहार दौड़कर गया और उसे हाथ पकड़कर लौटा लाया। बड़ी देर तक दोनों मित्र चुपचाप बैठे रहे। फिर एकाएक नीहार उठा और अपने मित्र को झकझोरते हुए बोला—"विद्रोह कर सकोगे, विद्रोह? रिवोल्ट? बोलो।"

प्रद्युम्न ने आँखें बड़ी कर लीं। पर कुछ बोला नहीं। समझ में आ गया कि उससे कुछ नहीं होगा। तब नीहार बोला—"विद्रोह तुम्हारे वश का नहीं है। पर कुछ करना तो ज़रूरी है, इसलिए तुम ठंडे जल का प्रयोग करो, उसी से काम बनेगा।"

प्रद्युम्न ने आँखें बड़ी कर लीं और बोला—"किसको ठंडे जल के प्रयोग की आवश्यकता है? मैं तो देख रहा हूँ कि तुम्हारा ही दिमाग़ गरम हो रहा है।"

नीहार ने और भी स्पष्ट करके कहा—"तुम्हारे घर में जितने भी लोग तुम्हारा मज़ाक उड़ाने के लिए तैयार रहते हैं, उनके सिर पर ठंडा पानी डालो यानी उनकी कतई परवाह न करो। जो तबीयत में आये सो करते जाओ, चाहे किसी को भला लगे या बुरा।"

"तुमने कहने को तो कह दिया, पर करना उतना आसान नहीं है। ज़रा समझकर देखो।"

नीहार ने जब देखा कि ऐसे काम नहीं बनता, तो उसने ब्राउनिंग की एक कविता के सम्बन्ध में एक कहानी सुनायी। भला इस मौके पर ब्राउनिंग को क्यों घसीटा गया, यह तो नीहार ही जाने; पर

अंग्रेज़ों को मालूम होता कि इस तरह उनके प्रिय कवि को एक मामूली घरेलू झगड़े में अप्रासंगिक ढंग से याद किया गया है, तो उन्हें बहुत आश्चर्य होता। ख़ैर, इस बात को जाने दीजिये। देखा जाय कि कहां तक यह कहानी समयोपयोगी थी।

ब्राउनिंग की एक कविता में यह कहानी आती है कि एक इटालियन ड्यूक फर्डिनन्ड रिकार्डी एक दूसरे ड्यूक की पत्नी से प्रेम करता था। अपनी प्रेमिका की एक झलक पाने की आशा में रिकार्डी उस ड्यूक के झरोखे के पास से निकलता था। ड्यूक-पत्नी भी रोज़ दिखायी पड़ती थी। घनिष्ठता बढ़ी और अन्त में दोनों ने तय किया कि भाग चलना चाहिए। पर साहस ने साथ नहीं दिया और दोनों का मिलन नहीं हो सका। बातें सब आँखों-आँखों में ही हो जाती थीं। अन्त में यौवन का स्वप्न धूमिल होने लगा। इस कारण ड्यूक पत्नी ने झरोखे में दर्शन देने के बजाय वहाँ अपनी एक संगमरमर की मूर्ति रख दी। रिकार्डी ने भी बाग़ में अपनी मूर्ति रख दी। अब बताओ कि इस प्रेम से क्या हासिल हुआ?

नीहार ने व्याख्या करते हुए कहा—"तुम लोगों के जीवन में भी इसी प्रकार व्यर्थता आ जायेगी। ब्राउनिंग ने कहा कि अनन्त प्रेम का इस प्रकार का छोटा-सा परिणाम पाप है। दोनों का पूर्ण मिलन नहीं हुआ। हृदय के अन्तरतम प्रकोष्ठ में मणि के दीप नहीं जले। जीवन एक अभिशाप-सा बना रहा। हमारे यहाँ जिन घरों में अभी संयुक्त परिवार प्रथा बनी है वहाँ नवदम्पति का जीवन अभिशाप बना रहता है, मानो उन्होंने कोई पाप किया हो। पता नहीं बड़े लोग अपने लड़कों और पतोहुओं से किस बात का बदला लेते हैं। जीवन खिल नहीं पाता। इसके विरुद्ध विद्रोह किये बिना काम नहीं चलेगा।"

प्रद्युम्न बोला—"मैं सभी बातें समझता हूँ पर करूँ तो क्या करूँ, कुछ करते नहीं बनता।"

नीहार बोला—"पर मित्र, बिना विद्रोह किये भी तो काम नहीं चलेगा। सुरधुनि को भी समझाओ।"

आग की चिनगारी.

प्रद्युम्न मलिन हँसी हँसकर बोला—"मामूली विद्रोह से कुछ भी नहीं होगा। यह ऐसी दीवार है कि भले ही धँस जाय, पर रास्ता नहीं छोड़ेगी।"

नीहार बोला—"मैं तुम्हारे इस निराशावादी मत से सहमत नहीं हूँ। यदि यह दीवार रास्ता नहीं छोड़ती तो फिर इसे तोड़कर ही दम लेना पड़ेगा।"

"यह मेरे वश की बात नहीं है। फिर सुरधुनि को कौन सीख दे? तुम से हो सके तो दो।"

यह मैंने सब कुछ सोच लिया है। मायके की कन्या और होती है और ससुराल की बहू और। एक तो जैसे प्रातःकाल का कमल है, और दूसरी संध्या का सूर्यमुखी। एक दिन की हँसी और आलोक में जगती रहती है, और दूसरी अँधेरे में मुँह छिपाकर आँख बन्द करती जाती है। इसलिए सुरधुनि को मायके से तैयार करना पड़ेगा। तुम शुक्रवार शाम के समय उसे लेकर ससुराल चले जाओ। बाकी सब ज़िम्मा मेरा है। शनिवार और इतवार इन दो दिनों में तुम दोनों के मनों को बदलना पड़ेगा।"

"अच्छा यह बात है, तब मुझे क्या करना होगा?"

"वह बाद को बताऊँगा। एक स्त्री से कुछ सलाह भी करनी है। स्त्रियाँ ही स्त्रियों को अच्छी तरह समझती हैं। उसे मैं इस षड्यन्त्र में शामिल कर रहा हूँ। बता दूँ वह कौन है? वह मेरी भाभी की बहन मीनू है। बड़ी चालाक लड़की है, जैसे दुधारी छुरी हो या आग की चिनगारी।"

२१

धीरे-धीरे सुरधुनि के सिर पर से घूँघट उतर गया। वे लोग ईडन गार्डन में क्रिकेट टेस्ट देखने गये हुए थे। टिकट पहले से ही ख़रीद लिये गये थे। सीट रिज़र्व थी, फिर भी भीड़ के मारे क्यू में खड़ा होना पड़ा। धक्कम-धक्का हो रहा था। शोरगुल तो था ही साथ ही तरह-तरह की टिप्पणियाँ भी चल रही थीं।

तरह-तरह की हल्की बातचीत सुनते-सुनते सुरधुनि के मन ने पंख पसारकर उड़ना चाहा। उसका घूँघट तो पहले ही उतर चुका था, अतः वह और भी लापरवाह हो गई। चारों तरफ़ की कुर्सियों में कितने ही पुरुष और स्त्रियाँ जमा थीं। सुरधुनि इनमें से एक थी। सब की बातचीत कानों में आ रही थी। कई लोग उसे एकाएक देख भी रहे थे। बाग़ बाज़ार दिमाग़ से उड़ गया।

नहीं, बाग़ बाज़ार उड़ा कहाँ? हमारे खिलाड़ी विपक्षियों की गद को रसगुल्ले की तरह उड़ाते जा रहे थे। सुरधुनि के बिल्कुल पीछे ही एक छोटे भैया और उनकी गर्ल फ्रैंड बैठी थी। वे लोग बराबर कुछ बातें करते जा रहे थे। ऐसा मालूम होता था कि शर्म और हया उन्हें छू भी नहीं गयी है। हमारे फील्डर नन्दलाल की तरह मतवाली चाल से चल रहे थे, मानो वे गौ चरा रहे हों, न कि क्रिकेट का खेल खेल रहे हों। इस चाल-ढाल को देखकर पीछे वाली वह लड़की बेहाल हो गयी और उसने गुनगुनाना शुरू किया—

"मोहन मोसे करत रार·····"

छोटे भैया भी क्यों पीछे रहते। उन्होंने भी अलापना शुरू किया—"बहियाँ पकर·····"

सुरधुनि ने एक बार पीछे की ओर मुड़कर देखा, फिर वह स्वयं ही शरमा गयी। इन लोगों को कोई लज्जा तो है नहीं। लड़की मुहल्ले के नाते भैया लगने वाले किसी के साथ आयी थी और फिर

दोनों एक साथ तान मिलाकर गा रहे थे। इस बीच में और एक कोड हो गया। हमारी तरफ़ के एक खिलाड़ी ने मानो मक्खन सने हुए हाथ से आकाश के चांद की ओर देखा। पर वह तो चांद नहीं बल्कि एक बहुत मामूली गेंद थी। पर जिसके हाथ में मक्खन लगा हो (वह मेंहदी लगने के ही तुल्य है) वह भला गेंद कैसे पकड़ता? नतीजा यह है कि गेंद मध्याकर्षण के नियमों से नीचे जा गिरी। मायावी गेंद का हमारे खिलाड़ी कहाँ तक पीछा करते। वह तो हमारे खिलाड़ी पुंगव के दोनों हाथों के बीच से मानो जगत की अनित्यता दिखाते हुए जा गिरी। मामूली बात थी, पर पीछे से वह लड़की सिर का जूड़ा खोलकर खड़ी हो गयी। और खिलाड़ी को सम्बोधित करते हुए बोली—"निकल जाओ गेट आउट!"

सब लोगों ने कनखियों से और शायद कुछ नाराज़ी से उस तरुणी को देखा, परन्तु उसको इसकी ज़रा भी परवाह नहीं थी। वह तरुणी कन्धे हिलाकर और जूड़ा मटकाकर बैठ गयी। नहीं, वह स्वयं नहीं बैठी, बल्कि काले चश्मे वाले उस छोटे भैये ने उसे खींचकर बैठा दिया।

बगल के दर्शक ने चने-मुरमुरे चबाते-चबाते कहा—"वे लोग कृपा करके बम्बई, मद्रास, नमालूम कहाँ-कहाँ से खेलने आये हैं, यही हमारा सौभाग्य है। नहीं तो टेस्ट मैच होता कैसे? इसलिए बहनजी ज़रा बाँध के।"

एक अपरिचित व्यक्ति से इस प्रकार टिप्पणी सुनकर बहनजी बिल्कुल नहीं घबरायीं बल्कि, वह जिनका नाम मीनू था, और इस मामले को इतनी आसानी से जाने देने वाली नहीं थी, वह झुँझलाकर बोल उठी "हमारे यहाँ के लोगों का पुरुषार्थ इतना ही है कि पैसे खर्च करके दूसरों के खेल देखें और दूसरों की बातें सुनें। न धूप में दौड़ें और न खेत में मेहनत करें। यह तो भले लोगों का काम नहीं। इससे बेहतर है चने-मुरमुरे चबाना।"

चने-मुरमुरे खाने वाले व्यक्ति का यह हाल हुआ कि काटो तो खून नहीं। पहले टिप्पणी करते समय उसकी बाँछें खिल गयी थीं,

पर अब उस पर स्याही-सी फिर गयी। सुरधुनि ने यह सब देखा, और मन ही मन उसने मीनू की तारीफ़ की।

उधर मुहल्ले के नाते भैया भी छोड़ने वाला नहीं था, वह बोल उठा—"तुमने ठीक कहा है। हम लोग भी अजीब लोग हैं। 'कहीं की ईंट, कहीं का रोड़ा, भानमती ने कुनबा जोड़ा' के अनुसार यह टीम इकट्ठी हुई, और हम लोग पैसे देकर आ गये बन्दर का नाच देखने।"

"हम लोगों के लिए कोई आशा नहीं मालूम होती। यदि लड़कियाँ छत पर हवा खाने जाती हैं तो फौरन लड़कों को भी ताज़ी हवा की कमी महसूस होती है। फिर भी अगर लड़कियाँ हिम्मत के साथ कुछ दिन छत पर फिरती रहें तो लड़के दुरुस्त हो जायँ। पर लड़कियाँ तो शर्म के मारे घबराती रहती हैं।"

मुहल्ले के नाते वाले भैया ने पूछा—"और लड़के ?" इस पर उस लड़की ने कहा—"ये लड़के भी कितने डरपोक होते हैं। यदि उन्हें घूरना है तो अच्छी तरह घूरें। कोई हम कपूर की बनी हुई नहीं हैं कि उड़ जायँगी। यह ख्वामख्वाह की लुका-चोरी अच्छी नहीं लगती।"

इसी प्रकार कुछ न कुछ बातचीत चलती रही और उधर खेल चलता रहा। हमारे अतिथि खिलाड़ियों का खेल समाप्त हुआ और हमारे बैट्समैन आगे आये। पर हमारे खिलाड़ी वसुधैव कुटुम्बकम् मत के थे, इस कारण वे विकेट पकड़कर पड़े रहने वाले नहीं थे। वे चाहते थे कि दर्शकों को बाकी खिलाड़ियों का खेल देखने का मौका मिले। इस कारण वे जल्दी-जल्दी विकेट छोड़कर मरने लगे।

अकस्मात् पीछे से कोई बोल उठा—"खूब गुलछर्रे उड़ा रहा है। नयी नौकरी मिली तो जैसे तकदीर खुल गयी। प्रतिदिन किसी न किसी कन्या वाले घर में चायपार्टी उड़ती है।"

थोड़ी देर में मीनू बोली—"देखो भैया, यह वही भ्रमरदास मालूम हो रहा है। आप पंख पसारकर हर ऐसे घाट में जा लगते हैं, जहाँ किसी कन्या की गंध आती है, पर आप कहीं बँधते नहीं हैं।"

भैया ने समर्थन किया, बोला—"यह प्रेम का परमहंस है। पक्का

खिलाड़ी है, यद्यपि इसे स्पोर्ट नही कहा जा सकता, नीर से क्षीर पीकर भग जाता है।"

प्रद्युम्न थोड़ी देर के लिए सुरधुनि को छोडकर चने-मुरमुरे खरीदने गया हुआ था। इतने मे पीछे की कुर्सी की मीनू सामने

प्रेम का परमहंस.

की खाली कुर्सी पर बैठ गयी, बोली—"जब तक आपके मित्र लौटकर नही आते, तब तक के लिए, यदि आपको आपत्ति न हो तो मै बैठ जाऊँ। इस कुर्सी से खेल ज्यादा अच्छा दिखायी देता है।"

पति के सम्बन्ध में इस प्रकार का इंगित सुनकर सुरो झेंप गयी और कुछ बोल नही सकी। पीछे से भैया ने बात चलायी—"ईडन गार्डन या देवताओं के उद्यान में जो खेल इस समय हो रहा है, इसे विवाह-बाजार भी कहा सकता है।"

मीनू बोली—"बुरा क्या है? जो होना है वह कहीं भी हो सकता है। यह जगह बुरी क्या है?"

इसके उत्तर में भैया ने पीछे से एक काग़ज़ की पुड़िया फेंककर मारी, बोला—"तुम जिस सीट पर बैठी हो, उसमें भी कुछ अर्थ है।"

मीनू ज़रा भी नहीं झेंपी बल्कि मुस्कराकर बोली—"मेरे हाथ

में पड़ जाय, तो मिट्टी-पिट्टी भुला दूँ, छठी का दूध याद करा दूँ और लेने के देने पड़ जायँ।"

सुरधुनि कुछ हिलकर बैठी। उसने सोचा कि सचमुच इस लड़की के हाथ में याग बाजार की परम्परा एक दिन में हवा हो जाती। पर गुरुजनों के सम्बन्ध में ऐसा सोचना शायद ठीक नहीं है। प्रद्युम्न भी लौटने में देर लगा रहा है।

उधर से भैया ने फिर शुरू किया—"शायद यह हजरत भी पहले-पहल एक निरीह मृग की तरह प्रेमारण्य में प्रविष्ट हुए हों, पर तुम्हारी तरह चित्रांगदाओं ने....."

"इस युग में चित्रांगदा कहाँ है?"—मीनू का स्वर कौतुक के कारण जलतरंग की तरह बज उठा।

प्रेमारण्य में मृग.

"जरूर-जरूर, वे चित्रागदायें तो हैं, पर उनके अंग-अंग में स्नो, पाउडर, रूज, लिपिस्टिक चित्रित करती हैं।"

"देखिए, भैया कैसी अजीब बात कर रहे हैं। इन्होंने तो जैसे आधुनिका स्त्रियों के विरुद्ध धर्मयुद्ध-सा घोषित कर रखा है। आप ज़रा मेरी तरफ़ से दो शब्द कह दीजिए न।"—कहकर उस अपरिचित स्त्री ने सुरधुनि को टिहुनी से मारा।

सुरधुनि स्तम्भित हो गयी, पर कुछ बोल न सकी। वह मुस्करायी फिर कुछ समझकर बोली—"आप अकेली ही सौ के बराबर हैं। मैं भला आपकी मदद क्या कर सकती हूँ?"

अपरिचित महिला बोली—"वाह आप कहिये, खुलकर कहिये। आप यह क्यों नहीं कहतीं कि हम लोगों को शिकार करने की ज़रूरत नहीं होती, लड़के खुद ही आकर हमारे जाल में फँस जाते हैं।"

भैया ने चश्मा सँभालते हुए कहा—"यह बात हो सकती है, पर जब तरुणियाँ शिकार के लिए निकल पड़ती हैं, तो वे इधर-उधर तीर मारती हैं।"

मीनू बोली—"पर इससे कोई घायल नहीं होता।"

सुरधुनि हँस पड़ी। मीनू फिर बोली—"ज़रा नटवर श्याम की कहानी तो सुनिए। यह वह हिरन के बच्चे हैं कि खुद ही शिकारियों की तलाश में घूमते रहते हैं, अन्त तक तीर खाते-खाते यह ऐसे हो गये कि कुमारी मृगया मित्र ने घायल कर दिया।"

"मृगया मित्र? नाम कुछ ज्ञात-सा लग रहा है।"

"ज़रूर ज्ञात होगा। बात यह है कि आप में से हर एक मृगया-मित्र है। यदि न हो तो मेरा तो यहाँ तक कहना है कि होना चाहिए।"

मीनू ने सुरधुनि की तरफ़ देखते हुए कहा—"आपने सुन लिया। ये हम लड़कियों को आखेट के लिए निकली हुई बताते हैं। परिस्थिति यह है कि शादी के बाद ससुराल के लोगों के धक्के सम्हालने के बाद अपने को सम्हालना कठिन हो जाता है। आप क्या कहती हैं?"

इन लोगों की बातचीत सुनकर सुरो की अजीब हालत हो रही थी। इन लोगों के रंग-ढंग और बातचीत अजीब थी। यदि कहीं ऐसे वातावरण में रहना सम्भव होता, तो कितना अच्छा होता, फिर तो उस घुटन से बचना आसान हो जाता।

सुरो ने अपने चारों तरफ़ देखा और वह अजीब पशोपेश में पड़ गयी। अन्त में उसने कहा—"बड़े घरों की बहुओं का जीवन अजीब होता है।"

पीछे की कुर्सी को ज़रा पास लाते हुए भैया ने कहा—"पर हमारे नटवर श्याम भाई शादी करना ही नहीं चाहते। वे तो समझते हैं कि शादी हुई कि बरबादी हुई। और भाँवरें पड़ीं कि भँवर में फँस गये।"

"बेचारे के लिए बड़ा दुख हो रहा है।"—सुरधुनि ने चुपके से मीनू के कान में कहा।

पर भैया बात लेकर उड़ गये, बोले—"बिल्कुल नहीं। यह सरासर गलत बात है। जब शादी नहीं हुई तो क्रिकेट का रन बनाना जारी रहेगा।"

इतने में प्रद्युम्न लौट आया। उसके हाथ में चने-मुरमुरे के तीन-चार पैकेट थे, बोला—"जब मैच में कोई रस नहीं रहा, तो लो इसी रस का आस्वादन करो।"

मीनू प्रद्युम्न की कुर्सी पर बैठी हुई थी। वह ज़रा भी घबराये बिना बोली—"इनसे मेरा परिचय हो गया, आप अगर बुरा न मानें तो पीछे की कुर्सी पर जाकर बैठिये और जो मज़ेदार बातचीत चल रही है, उसे सुनिए।"

भैया के साथ परिचय हो जाने पर भैया ने क्रिकेट के रन वाले उसी प्रसंग को चलाया और कहा कि इस खेल में क्रिकेट के खेल के मैदान के बदले चाय की बैठक ही कर्मक्षेत्र होता है। क्रिकेट के खिलाड़ियों की तरह पैड आदि न बाँधकर बड़ा नीरस नफीस चश्मा लगाया जाता है। दूसरे फील्डर प्रतीक्षा करते रहते हैं, जैसे कन्या की बहनें, सहेलियाँ, भाभियाँ इत्यादि।

प्रद्युम्न के लौटने पर सुरधुनि कुछ कुंठित हो गयी थी, पर इन बातों को सुनते-सुनते वह हँसी रोक न सकी। चारों तरफ़ अपरिचित पुरुषों के बीच में ही पीछे लौटकर सुरधुनि बोली—"आप तो कमाल की मज़ेदार बातें करते हैं।"

भैया ने इसके उत्तर में हाथ उठाकर नमस्ते किया। बोले—

"थैंक्यू मैडम ! उसके बाद सुनिए। कन्या के इर्द-गिर्द जो चुपके-चुपके बातें होती रहती हैं, उनसे एक वातावरण उत्पन्न होता है। बाउण्डरी के आस-पास, विकेट से दूर, स्क्रीन के पीछे पड़ौसी तथा रिश्तेदार दर्शक रहते हैं। जो पियानो कभी बजाया नहीं गया, वह पियानो तथा कन्टिनेन्टल साहित्य की इधर-उधर फैली हुई किताबें भी वातावरण को रूप और रंग देती रहती हैं।"

मीनू ने तड़ाक से तमाचा मारते हुए कहा—"पर आपने दूल्हा के मित्रों की बात तो कही नहीं।"

"नहीं, नहीं, उनका भी काम है। वे एवजी या डिड नाट बैट वालों में हैं। यदि खेल खतम हो गया, तो उन्हें फिर मौक़ा नहीं मिलता।"

सुरधुनि मीनू से बोली—"कुछ भी हो, आपके भैया बड़े मजे में बातें करते हैं।"

भैया कहते गये—"पात्र आकर चाय की मेज पर बैठता है। पहले वह देखता है कि जिस केक को कन्या के हाथ का बना हुआ बताया गया, वह सबसे बडे रेस्टोरेन्ट का बना हुआ है। जिन्हें यह बतलाया गया कि ये कन्या की काढ़ी हुई चीजें हैं, वे बाज़ार से किराये पर लायी गयी हैं। जिन पुस्तकों में कन्या की रुचि बतायी गयी है उनके पन्ने अभी तक काटे नहीं गये।"

मीनू कह उठी—"जब चारों तरफ़ इतना धोखा है तो ईश्वर का नाम लेकर शादी वाली रस्सी में लटक जाना ही श्रेयस्कर है।"

"नहीं, नहीं, हमारे बैटमैन भी दूध के धुले हुए नहीं हैं। वे पक्के खिलाड़ी हैं। इसलिए वे चारों तरफ़ दृष्टि रखकर विकेट सम्हालने लगे। ऐसे समय विकेट-कीपिंग के लिए होने वाली सास मैदान में आयी। मीनू ने फन-सा उठाते हुए कहा—"सास माने 'मदर-इन-ला'? ओ हो ! मैं इसी जंजाल के कारण कभी शादी नहीं करूँगी। ससुराल के और सब लोगों को तो किसी तरह खुश रखा जा सकता है पर सास···उससे तो ईश्वर ही बचाये। यह नहीं हुआ, वह नहीं हुआ, घूँघट एक इंच नीचे है, बस बिगड़ खड़ी हुई। मालूम है ईसाइयों में एक

साथ दो विवाह गर्हित क्यों समझे गये हैं ? इसकी सज़ा क्या है ?"

"जेलखाना और क्या ?"

"नहीं, अभी नहीं बता पाये।"

"सामाजिक निन्दा।"

"नहीं, अब भी नहीं बता सके। मेरी राय में एक साथ दो विवाह करने में सबसे बड़ी खराबी यह है कि दो सासें मिलती हैं।"

"ठीक है, आजकल अमेरिका में गुंडे स्त्री के बदले सास को उठा ले जाते हैं और चिट्ठी डाल देते हैं कि फलानी जगह रुपये रख दो, नहीं तो सास को रिहा किये देते हैं।"

सुरो ने अर्थपूर्ण दृष्टि से मीनू को देखा और फिर धीरे से उस का हाथ दबा दिया। प्रद्युम्न ने यह बात देखी तो उसने खुश होकर भैया से कहा—"अच्छा बताइये तो सही कि इसके बाद क्या हुआ।" फिर प्रजापति देवता की क्रिकेट की कहानी शुरू हुई। कन्या की माता बैठक में दाखिल होकर बैट्समैन पर नज़र रखने लगी। इसके बाद कन्या खेल के मैदान में आ धमकी। चारों तरफ़ बातों-बातों में तालियाँ पिट गयीं। पात्र के साथ चार आँखें होते ही उसने बैट की तरह हाथ बनाकर नमस्कार किया। इसके बाद लड़की ने फिर कर-कमलों को जोड़कर नमस्ते का उत्तर दिया, मानो उसने गेंद फेंका। अब प्रश्न यह आया कि पात्र बाउण्डरी करके साफ़ निकल जायगा, या कैच आउट होगा या क्लीन बोल्ड। कन्या ने तो गेंद फेंका, पर कई बार ऐसा भी हो जाता है कि कोई पड़ौसिन या कन्या की किसी सहेली ने बीच ही में बैट्समैन को समाप्त कर दिया।"

मीनू ने प्रश्न किया—"जब कन्या खेल में उतर जाती है, तो दूसरी फील्डरें क्यों रहती हैं ?"

"वे इसलिए रहती हैं कि मौक़ा पड़ने पर काम आयें। मौक़ा देखकर वे खिसक भी सकती हैं और पास भी आ सकती हैं। उनकी खास ज़रूरत तो इसलिए है कि बैट्समैन बाउण्डरी बनाकर निकल न जाय। उसे फँसाना ही फील्डरों का काम है।"

प्रद्युम्न बोला—"तब तो बैट्समैन की बड़ी मुसीबत रहती है।"

मीनू ने तेज़ तलवार की तरह उत्तर दिया—"मुझे तो कन्या की हालत पर ही दुःख हो रहा है कि वह स्वयं तो शिकार की तरह है।

प्रजापति का क्रिकेट खेल.

न वह कुछ चुन सकती है और न जाँच कर सकती है।"

सुरो ने मुस्कराकर मीनू का समर्थन किया। मीनू ने थोड़ी देर रुककर कहा—"हाँ, एक बार शादी हो गयी, तब तो स्त्री का ज़ोर बहुत बढ़ जाता है। मान लो ईस्ट बंगाल और मोहन बगान के मैच में मियाँ-बीवी गये हुए हैं। इतने में मियाँ की पहले की गर्ल-फ्रेंड सामने आकर कहती है—'हैलो', तब क्या हालत होगी?"

अब सुरो से रहा नहीं गया, बोली—"ऐसी भी परिस्थिति हो सकती है कि वह अपनी गर्ल-फ्रेंड के साथ खेल देखने गया है और उधर से पत्नी ने आकर कहा—'हैलो', तो क्या होगा?"

"यह आपने बहुत अच्छी बात कही।"

मीनू एकदम से जोश में आ गयी और उसने एकदम से सुरधुनि को आलिंगन में जकड़ लिया, बोली—"सारे कलकत्ते में मैंने आपकी तरह दूसरी स्त्री नहीं देखी। आप स्त्रियों की लीडर हो सकती हैं। मेरे साथ नारी-समिति में नाम लिखाइये।"

अकस्मात् ताव में आकर वह इतनी सुन्दर बात कह सकती है, इसका सुरधुनि को अनुमान नहीं था, पर उसका मन जागृत था। जो कुछ कसर थी वह इतनी ही थी कि कहीं से कोई ज्वार का धक्का आकर उसकी कड़ी तड़का दे।

उसके बाद भैया ने फिर कहानी शुरू की—"लड़की गेंद फेंकती है, लड़का उसे बैट से रोकता है, कन्या की माँ विकेट की रक्षा करती है और कन्या-पक्ष फील्डिंग करता है।"

मीनू ने उसे रोकते हुए कहा—"पर ओवर में ६ के बजाय ५ बॉल होते हैं, क्योंकि पंचशर वाला मामला ठहरा न।"

प्रद्युम्न ने प्रश्न किया—"और अम्पायर?"

चने-मुरमुरे की खाली थैली झाड़ते हुए भैया ने कहा—"अम्पायर है वह जो मध्यस्थ बना है। अर्थात् लड़की या लड़के का कोई मित्र। अम्पायर है प्रजापति। हृदय में आहत होने से वह हिट विकेट बोल्ड एल० बी० डब्ल्यू होगा या बोल्ड आउट इस पर राय अम्पायर ही दे सकता है। असल में वह आउट होकर भाग न सके यह देखना आवश्यक है।"

इस प्रकार बातचीत होते-होते खेल ख़त्म हो गया। सुरधुनि ने मीनू का हाथ पकड़कर कहा—"तो आज यहीं तक रहा। आपके साथ बातचीत में बड़ा आनन्द आया। ऐसा मालूम होता है कि आज मैंने अपने आपको पहिचाना है।"

मीनू ने भी जोश में आकर कहा—"अवश्य ही आप अपने को पहचान पायेंगी। हम लोग यही चाहती हैं कि स्त्रियाँ अपने पैरों पर खड़ी होना सीखें।"

२२

इसके अगले दिन की बात है। सारी रात सुरधुनि ने मीनू को स्वप्न में देखा। उसने मन ही मन यह कल्पना की कि यदि मीनू को सुरधुनि की सास आदि का सामना करना पड़े, तो वह कैसा व्यवहार करे। इस प्रकार की कल्पना में भी आनन्द था। उसने कल्पना की कि मीनू शाम के समय घर से निकल रही है। इतने में यदि भैया से भेंट हो गयी, तो क्या होगा? अवश्य ही मीनू की चितवन में कोई ऐसी बात होगी जिससे वह उसे घायल करके मोटर में जा बैठेगी।

मान लो कि कौशल्या फूफी से मीनू की भेंट हो जाय, तो वह क्या करेगी, वह कहेगी—फूफी जी, आपको भला यह भी सुध नहीं रही कि गंगा-स्नान का समय हो गया, कहीं देर न हो जाय, कहकर वह भाग जायगी।

और कहीं सास महोदया से भेंट हो गयी तो कहेगी—माता जी, आप भी मेरे साथ चलें। बात यह है कि थोड़ी हवाखोरी अच्छी होती है।—कहकर वह बिना प्रतीक्षा किये आगे बढ़ जायेगी क्योंकि वह मन ही मन अच्छी तरह जानती है कि सन्ध्या के पवित्र समय में इस म्लेच्छ नगरी में बड़ी भीड़ रहती है और किसी प्रकार साफ़ रहकर चलना सम्भव न होगा। इसी कारण मोक्षदा कभी भी हवाखोरी में साथ न देगी। बहू को अपनी मनमानी करने से न रोकेंगी।

दिन भर इसी प्रकार की बातें सुरधुनि के मन में उठती रहीं। वह चंचल और अस्थिर हो उठती थी। यहाँ तक कि प्रद्युम्न ने पूछा—"क्या बात है? तबियत तो ठीक है न?"

"नहीं, मैं बिल्कुल ठीक हूँ।"

"मुझे भी अच्छा लग रहा है। ऐसा मालूम हो रहा है कि मैं तुम्हें फिर से पा रहा हूँ।"

सुरधुनि हँस पड़ी। बोली—"यह क्या अजीब बात है! फिर से पाने का क्या मतलब है? तुम तो हमेशा ही कुछ दूसरी बात कहा करते हो!"

प्रद्युम्न बोला—"पहले पाने का मतलब था, पाकर सन्दूकची में बन्द कर दिया, और खुद गद्दीदार बनकर बैठ गये। अब मैं इसे पाना नहीं मानता।"

सुरधुनि बोली—"अच्छा तुम्हारा मतलब आधुनिक ढंग से पाने का है यानी तितली के ढंग पर इधर से उधर उड़ते रहे। इसी को शायद रेडी ढंग से पाना कहते हैं। भला ये कम्युनिस्ट कौन हैं?"

प्रद्युम्न बोला—"जनता के कॉमन इष्ट में सबसे कम अनिष्ट होगा, ऐसा जो लोग कहते हैं, वे ही कम्युनिस्ट हैं। हमारे कालेज में कुछ ऐसे लोग मौजूद हैं, जो लाल झंडे वाले हैं। पर जाने दो उन बातों को। चलो आज तुम्हें क्रन्दन सागर दिखलावें। यह गंगा के ही किनारे है।"

"हमें क्रन्दन सागर देखना नहीं है, कहीं हास्य सागर हो तो वहाँ ले चलो।"

प्रद्युम्न बोला—"तुम्हें दोनों चीजें दिखलाऊँगा। वह किस स्थान पर है, अभी तुम्हें नहीं बताऊँगा। एक नया ड्राइवर आज हमारी गाड़ी को चला रहा है। वह सब कुछ जानता है। चलो आज ज़रा जल्दी निकल चला जाय। माँ को समझा-बुझाकर राज़ी कर लो।"

सुरधुनि बोली—"समझाने-बुझाने की क्या ज़रूरत है। कह दिया जाय कि उस घर में आज रिश्तेदार आ रहे हैं। कौन ख़बर लेने जा रहा है। मैं एक बात कहे दे रही हूँ कि तुम भी किसी से कुछ न बताना और सुनो, आज जल्दी लौटना नहीं है। जब हम अधिक रात हो जाने पर उस घर में जायँ, तो उधर कह दिया जाय कि इधर बहुत से रिश्तेदार आये थे, इस कारण देर हो गयी।"

प्रद्युम्न ने सोचा कि सुरधुनि एक दिन में ही बदल गयी। वह स्वयं पकड़ में आ रही है, लापरवाही से बातचीत कर रही है, स्वतन्त्र वातावरण में तितली की तरह पंख पसारकर उड़ रही है।

वह आज अपनी सास की पतोहू नहीं, अपने पति की प्रेयसी है जिसे इटालियन भाषा में कारा मियाँ कहते हैं। आज वह स्वतन्त्र है।

कारा मियाँ शब्द में कितना माधुर्य है, यह स्वदेशी सन्देश नहीं, वेनिस नगरी का लेमन केक है। आज वह सनातन बंगालिन एक नये रूप में सामने आ रही है और सो भी बहुत पास। यह केवल गठबंधन के द्वारा बाँधी हुई धर्मपत्नी नहीं है, प्रेयसी है जिसे पाने के लिए बड़ी लम्बी साधना करनी पड़ती है। हज़ारों में सुरधुनि ही का व्यक्तित्व है, जो अभिमान और लोक-लज्जा सब बातों की परीक्षा में उत्तीर्ण होकर मन के निकट बढ़ आयी। इसलिए प्राप्ति की पूर्णता भी गहरी है। आज फूलों की माला की दूरी भी खटक रही है। देह तो सीमित है, पर आत्मा असीम में आकर मिल रही है।

गंगा के किनारे मोटर हवा हो गयी। साथ में दो व्याकुल प्राण थे, जो मिलन के लिए उत्सुक थे। आज कोई आसपास नहीं था, न कोई बाधा थी और न कोई बंधन। चारों तरफ़ सुनसान था। सामने बैठा हुआ शोफर भी लुप्त-सा हो गया था। उसके सिर की टोपी सामने की तरफ़ खिंची हुई थी। वह एकाग्र मन से मोटर चला रहा था। सामने की सीट और पीछे की सीट के बीच काँच का पर्दा पड़ा हुआ था। गंगाजी पर स्तब्ध स्टीमर अपने फनेल निकालकर मानो उन्हें विश्व के अनन्त में निमंत्रण दे रहे थे।

सुरधुनि बोली—"उस दिन के नाटक में कुछ मज़ा नहीं आया।"

प्रद्युम्न बोला—"क्यों? नाटक तो बहुत ही सुन्दर था और था भी बिल्कुल आधुनिक। नाम भी था—'दिल्ली का लड्डू'।"

"कुछ भी हो, मुझे अच्छा नहीं लगा। इसमें नाटक का कोई दोष नहीं था।"

"फिर क्या बात थी? जब नाटक अच्छा था, अभिनय भी अच्छा था, तो फिर क्या बात थी?"

वह फिर कह उठा—"इतने लोग चित्र के पीछे से देख रहे थे,

फिर भी अच्छा क्यों न लगा ?"

पर सुरधुनि आज दूसरे ही लोक में विचरण कर रही थी, बोली—"बात यह है कि चिक के अन्दर से देखने के कारण मन पर बोझ पड़ रहा था। यह मैं जानती हूँ कि तुम्हें यह पसन्द नहीं, पर तुम बिगड़ क्यों नहीं खड़े होते ? सैकड़ों बाधाओं और लोकाचारों से तुम मेरा उद्धार क्यों नहीं करते ? उन लोगों के सामने ऐसा मालूम होता है, जैसे मैं मैं नहीं रहती और तुम्हें भी असहाय पाती हूँ। ऐसा भला क्यों होता है ?"

उसकी बातों में उत्तेजना का कुछ पुट आ गया था। जल्दी ही उसने प्रद्युम्न के कन्धों पर अपना सिर रख दिया। कितनी निश्चिन्त निर्भरता थी ?"

थोड़ी देर बाद सुरधुनि बोली—"चलो आज हम नाटक देखने चलें। उसी नाटक को देखेंगे।"

"क्यों, उसे तो एक बार देख चुकी हो। चलो कोई और नाटक देखें।"

सुरधुनि बोली—"नहीं, उसी में चलेंगे। शादी के बाद पहला नाटक इस प्रकार नीरस होकर हमारी स्मृति में जमा रहेगा, इसे मैं सहन नहीं कर सकती। आज हम दोनों एक साथ बैठकर उस दिन का बदला निकालेंगे। आज मैं अभिसारिका बनी हूँ।"

प्रद्युम्न बोला—"बिल्कुल ठीक है। चलो वहीं चलेंगे। भीड़ के बीच में ही हमारा अभिसार सम्पूर्ण होगा। ड्राइवर, श्याम बाजार चलो।"

सीधे उस तरफ़ न जाकर मोटर देर तक निर्जन रास्तों में चक्कर काटती हुई भीड़ के रास्ते में आ गयी। अब गाड़ी की गति मन्थर हो गयी। ट्राम के लिए प्रतीक्षा करने वाले लोग गाड़ी से सटकर कई बार खड़े मिलते थे और उनकी उत्सुक दृष्टि गाड़ी के अन्दर पड़ती थी। सुरधुनि के सिर पर घूँघट न मालूम कब और थोड़ा नीचे उतर चुका था।

प्रद्युम्न ने इसे देखा। उसके मन में डर था कि कहीं नई स्वाधीनता

पर पर्दा न पड़े। कहीं जनता की बलुई मिट्टी में उसकी हृदय-स्रोत-धारा लुप्त न हो जाय। पर प्रद्युम्न भी कमर कस चुका था कि किसी भी तरह अपने को खोयेगा नहीं। महादेव के ध्यान-भंग की साधना की बात लिखकर कालिदास अमर हो गये हैं, पर नयी दुलहिन के ध्यान-भंग की बात भी किसी ने लिखी है? यह तो और भी कठिन है। क्या किसी कवि को इसका तजुर्बा नहीं हुआ? क्या वे ऐसा समझते रहे कि जीवन के प्रथम दिन से ही नारी की निद्रा टूट जाती है।

और यदि कहीं वह नारी रिश्तेदारी के पहरे में बँध गयी, और फूफियों, चाचियों, मौसियों के परिहास और सहेलियों की मुस्कराहट में दब गयी, तब तो उसकी निद्रा भंग करना और भी कठिन हो जाता है। यह तो पहले ही प्रमाणित हो चुका है कि वह नींद तोड़ने के लिए तैयार है, पर कलकत्ते की ईंट और लकड़ी के किले में आकर वह फिर से कैदिन बन गयी है।

इसलिए हल्की हँसी के द्वारा काम शुरू हुआ। सुरधुनि लोक-चक्षु के अन्तराल में जग उठने के लिए तैयार थी, पर उसे सबके सामने जगाना है।

बात चलाने का एक मौका पाकर प्रद्युम्न बोला—"तुम्हें एक मज़ेदार बात बताऊँ। मेरे एक मित्र सुजित विलायत में पढ़ने के लिए गये हुए हैं। वहाँ सह-शिक्षा है। उसने वहाँ जाकर जो कुछ बातचीत सुनी है, उसी में से एक मज़ेदार घटना यह है।"

"अवश्य सुनाओ। तुम्हारे मित्र के हथकंडे अवश्य ही बहुत ही दिलचस्प होंगे।"

"नहीं, नहीं, उनके हथकंडे अभी शुरू नहीं हुए, अभी तो सुनी-सुनायी बातें हैं। अभी सीख रहे हैं। बाद को शायद खुद भी हाथ बढ़ायें। दो सहेलियाँ कालेज के कॉमन रूम में बातचीत कर रही थीं। एक ने दूसरी से कहा—"डाक्टरों का कहना है कि चुम्बन करना स्वास्थ्यकर नहीं है, क्या तुम भी इसी राय की हो?"

लूसी बोली—"मेरी राय यह नहीं है।"

सूसी बोली—"तुम शायद कभी . . ."

इस पर लूसी बोली—"नहीं, नहीं, मैं कभी बीमार नहीं पड़ी।"

यह कहानी सुनकर सुरधुनि के कपोल लाल नहीं हुए पर हँसी के मारे उसकी साँस बन्द होने लगी। प्रद्युम्न यह देखकर बहुत खुश हुआ, और उसने फिर कहानी शुरू की—"पता नहीं सुजित का क्या हाल हो ? वह हमेशा लड़कियों से अधिक हेल-मेल रखने वाला है। उसका मन हमेशा से तैयार है कि वह लड़कियों का प्रिय बने। यहीं से उसने सबक शुरू कर दिये थे। पहला यह था कि जब तुम्हें अपनी प्रेयसी मिले, तो उसके हाथ पकड़ लो।"

"दूसरा पाठ क्या है ? जान लेना अच्छा है।"

"इसके बाद हाथ ज़रा दबा दो जिससे उसे यह ज्ञात हो जाय कि तुम उससे प्रेम करते हो।"

"तीसरा पाठ क्या है ?"

"तीसरा सबक यह है कि हाथ बढ़ाकर उसे ज़रा आहिस्ता से छू लो, जिससे उसे पता चले कि फिर तुम आगे भी उसे छुओगे।"

"छिः तुम तो सबक में बड़े पटु मालूम होते हो।"

प्रद्युम्न ज़रा सोचकर बोला—"इसके बाद का पाठ बताता हूँ, सुनो। इसके आगे बस यही रह जाता है कि अपनी प्रेयसी को साथ में लेकर टहलने जाओ।"

"तो मालूम होता है कि जो कुछ आप कर रहे हैं वह सब उसी पाठ के मुताबिक कर रहे हैं। अगला सबक बताओ।"

"उसके बाद है पुस्तकों के पन्ने फाड़ डालना और आगे अपनी बुद्धि से परिस्थिति का सामना करना।"

सुरधुनि ने पूछा—"फिर तुम्हारे मित्र ने क्या किया ?"

प्रद्युम्न बोला—"इंगलैण्ड जाकर मित्र की शिक्षा कहाँ तक बढ़ी यह नहीं मालूम, पर वह हम लोगों से कह गया है कि वह प्रिंस चार्मिंग बनने की साधना करेगा। चेहरा अच्छा है, और साथ ही पैसों की भी कमी नहीं है। वह यह भी कह गया है कि वह ऐसी लड़की से प्रेम करेगा, जिसने इसके पहले किसी से प्रेम नहीं किया हो।"

"समझ गयी, समझ गयी"—कहकर सुरधुनि लोटपोट हो गयी। बोली—"यानी मतलब यह है कि तुम्हारे मित्र अछूती कली से प्रेम करना चाहते हैं। अछूती कली से इसलिए कि वे उसकी पंखुड़ियाँ नोच डालें।"

"तुमने बहुत अच्छा कहा। कमाल की बात कही।"

"तुम्हारे मूर्ख मित्र जिस मुसीबत में मुब्तिला होंगे, वह अब मैं बता सकती हूँ। वे प्रेम के फंदे में न फँसकर ब्याह के फंदे में फँसेंगे।"

"तुमने यह कैसे समझ लिया?"

"मैं स्पष्ट ही देख रही हूँ कि उन्हें कोई ऐसी लड़की मिलेगी जो प्रेमी खोजने के बजाय पति खोज रही होगी।"

ज़रा थमकर सुरो फिर बोली—"जब तुम्हारे मित्र प्रेम में व्याकुल होकर अपनी प्रेमिका से कहेंगे—'मैं तुम्हारे योग्य थोड़े ही हूँ।' तब वह लड़की कहेगी—'ऐसा तो होना तुम्हारे लिए मुश्किल है, पर अन्य लड़कियों के तुम योग्य हो इसलिए आओ शादी करें'।"

प्रद्युम्न बोला—"वह बात ठीक है, प्रेम में लोग बुद्धिहीन हो जाते हैं और शादी में फँस जाते हैं। शादी के बाद लोग स्त्रियों का दोष देखना शुरू कर देते हैं।"

सुरधुनि बोली—"इस मामले में तुम्हारे मित्र को इसका मौका नहीं लगेगा। ज्योंही तुम्हारे मित्र दोष निकालना शुरू करेंगे, त्योंही वह विदेशी लड़की कहेगी—'मुझ में दोष है, तभी तुम से अच्छा दूल्हा नहीं फँसा पायी।' अब कहो इसके आगे तुम्हें क्या कहना है?"

सुरधुनि ने जिस प्रकार से अपने व्यक्तित्व को प्रकट किया, वह देखकर प्रद्युम्न बहुत खुश हुआ। बोला—"मान लो इसके उत्तर में मेरे मित्र कहें कि इतने दिनों से मैं तुम से प्रेम करता हूँ, फिर भी . . ."

"फिर भी क्या? क्या पेन्शन लोगे?"

प्रद्युम्न से आगे कुछ कहते नहीं बना, बोला—"स्त्रियाँ कितनी चालाक होती हैं।"

सुरधुनि का नव-जागृत व्यक्तित्व उस्तरे की तरह पैना हो गया था, वह मुस्कराकर बोली—"क्या तुम पुरुष ही कम चालाक हो ? शादी के पहले तो आसमान के तारे तोड़ डालने की प्रतिज्ञा हो जाती है। पर बाद को किस प्रकार छोटी-छोटी बात पर झगड़े होते हैं। स्त्रियों को तुम चालाक कह रहे हो, पर मैं तो कहती हूँ कि वह बड़ी बेवकूफ़ है जो चिकनी-चुपड़ी बातों में फँस जाती हैं।"

प्रद्युम्न ने अपने स्वर में घनिष्ठता लाते हुए पूछा—"तो फिर वैसी हालत में स्त्री को क्या करना चाहिए ?"

"क्या करना चाहिए ? यह भी कोई कहने की बात है ? प्रेमी से कहना चाहिए—हाँ, सभी बातें ठीक हैं। पर इस वर्णन के अनुसार मैं एक कुत्ता पालना चाहूँगी, तुम उसमें सहायता दो।"

तरुण पति हँस पड़ा, बोला—"तुम लोग न केवल चालाक हो, बल्कि लोगों को लेकर खेलना चाहती हो, चाहे प्राचीना हो या आधुनिका, सबका यही हाल है।"

"तुम आधुनिकाओं की बात बताओ।"

"आधुनिकाएँ प्रेम करती हैं, तब विवाह करती हैं। उनका कहना है कि विवाह तो मामूली चीज़ है, पर प्रेम वह रोग़नजोश है जिसके बिना कोई ठाठ-बाट वाला खाना नहीं होता। सुनो, एक आधुनिका की कहानी सुनो। मेरा एक मित्र है प्रेमोत्पल। वह कम उम्र में ही पक चुका है। वह एक बार रोडोडेनड्रन रोड की एक लड़की के प्रेम में पड़कर अपने को इस प्रकार भूल गया कि उसे घर लौटना भी नहीं रुचा, पर लड़की तो केवल उसे उल्लू बनाना चाहती थी। कवियों ने यह जो कहा कि 'जो मज़ा इंतज़ार में देखा, वह न वस्ले यार में देखा' मत की उपासिका थी।

"प्रेमोत्पल एक दिन रात को विदाई के समय गुडनाइट कर उठा, तो वह नाज़नीन बोली—'गुडनाइट क्यों कहते हो डार्लिंग, गुड-मार्निंग कह दो तो क्या बुराई है ?' इस पर प्रेमोत्पल लज्जित होकर उठ पड़ा। पर वह निर्णय चाहता था। जाने पंचशर में से कौनसा शर रोडोडेनड्रन रोड की लड़की पर लगा, यही वह जानना चाहता था।"

"अब बताओ कि आगे क्या हुआ ?"

"प्रेमोत्पल ने मादामोआजल का हाथ पकड़कर कहा—'बताओ तुम मुझ से शादी करोगी या नहीं ? यदि तुम ना कर दो, तो मैं मर जाऊँगा।' इस पर उस रोडकी मिस वाबा बोल उठी—'इसके लिए तुम कोई चिन्ता न करो। यदि सही समय में ख़बर मिली, तो मैं फूलों के दो-चार गुच्छे घर भिजवा दूँगी।"

सुनकर सुरधुनि का यह हाल हुआ कि हँसते-हँसते पेट फूल गया। "ऐसा मालूम हो रहा है कि मैं पृथ्वी पर नये सिरे से उत्पन्न हो रही हूँ। तुम्हारे घर की मौसी, फूफी और ऊँची दीवारें अब मुझे रोक नहीं सकतीं। मैं तुम्हें भी अब दबकर न रहने दूँगी। आज से हम बालिग हो गये।"

प्रद्युम्न बोला—"तुम ठीक ही कह रही हो, तुम्हारा साहस देखकर मुझे उत्साह हो रहा है।"

"तुम्हें पहले ही इस सम्बन्ध में आगे बढ़ना चाहिए था। बाहर तो तुम लोग सब तरह से दबे हुए हो ही, घर के अन्दर भी तुम दब कर रहते हो।"

प्रद्युम्न ने बातों का रुख फेरते हुए कहा—"यह देखो रास्ते के दोनों तरफ़ कितने सिनेमाघर खुले हैं ? यह जानती हो कि इनमें स्त्रियों की भीड़ अधिक क्यों होती है ?"

"यह तो मर्दों को ही मालूम होगा, तुम्हीं बतलाओ मामला क्या है ?"

"बात यह है कि इधर देशी चित्र दिखाये जाते हैं, और ये चित्र स्त्रियों को अधिक इसलिए भाते हैं कि वे समझती हैं कि इनके सेवन से उनका यौवन अक्षुण्ण रहता है। वे चाहे भद्दी और मोटी हो जायें, पर इन चित्रों को देखकर उन्हें यह भ्रम होता है कि वे नायिका बन सकती हैं। न तो किसी तरह का व्यायाम करना पड़ता है, और न और कुछ, वे तो चिर-षोडशी बनी ही रहती हैं।"

"तुम लोग भी तो चिर-बडविशी बने रहना चाहते हो।"

"हो सकता है, पर हमें बनने कौन देता है ? नायक की उम्र

बढ़ गयी, तो नायिका का प्रेम ही नहीं जगता। सिनेमा में नायक की उम्र बढ़ गयी, तो बस आफ़त हो जाती है। चारों तरफ़ से

तालियाँ पिटने लगती हैं, और दर्शिकाएँ गालियाँ देती हैं, पर नायिकाओं के सात खून माफ़ हैं।"

"शायद उन मोटी नायिकाओं के कारण ही सिनेमाघरों के पर्दे इतने कँपते रहते हैं?"

"तुमने ठीक कहा है। उस कम्पन को तुम शिवेलरी का सिहरन भी कह सकती हो।"

मोटर आकर थियेटर के सामने रुक गयी। प्रद्युम्न दरवाज़ा खोलकर उतर आया और साथ ही साथ सुरधुनि भी उतरी।

घूँघट माँग से ऊपर उठ चुका था। दोनों के चेहरे सहज सरल हँसी से उद्भासित थे और वे एक दूसरे का हाथ पकड़कर थियेटर के अन्दर दाखिल हुए। न कोई लज्जा थी, और न कोई बाधा। सास, मौसी, फूफी, पड़ौसिनों की कोई बाधा की छाया तक यहाँ नहीं थी। यहाँ तो निर्बाध मुक्त स्वाधीनता थी।

नारी आज अर्धमानवी के रूप में जाग उठी थी। उसमें आकर आधी कल्पना मिल गई थी। आज का अभिनय उनके जीवन में बराबर चलता रहेगा।

ड्राइवर की सीट से उतरकर नीहार ने कनटोप उतार लिया और बालों में हाथ फेरते हुए प्रेक्षागृह की ओर देखा, उसका चेहरा मुस्करा रहा था। बाहर और भीतर चारों तरफ़ रोशनी ही रोशनी थी।